श्री सुखसागर ज्ञान बिंदु नं० ४१

अर्हं नम

आत्म बोध सार संग्रह.



संग्राहक-

ज० यु० प्र० भ० खरतरगच्छाधिराज श्री श्री १००८
श्रीमज्जिनहरिसागरसूरीश्वरान्तेवासी मुनि
श्री कवीन्द्रसागरजी महाराज



प्रकाशक—

श्री हरिसागर जैन पुस्तकालय—लोहावट

वीर सं० २४६६ वि० सं० १९९६

मूल्य आठ आना

धन्यवाद.



प्रस्तुत पुस्तक प्रकाशन के लिये विदुषी साध्वीश्रेष्ठा श्रीमती जतनश्रीजी महाराज के सदुपदेश से द्रव्यसहायता देने वाले छवड़ा निवासी श्रीयुत राजमलजी गोलेछा के सुपुत्र श्रीयुत तेज-मलजी की धर्मपत्नी श्रीमती हुलास बाई तथा श्रीयुत कनकमलजी की धर्मपत्नी श्रीमती विदामी बाई और नागोर (मारवाड़) निवासी श्रीयुत छगनमलजी दुगड़ की पुत्रवधु श्रीमती जीवणकोर बाई धन्यवाद के पात्र हैं ।



* नमोऽस्तु गुरुदेवाय *

* समर्पण *



आत्मबोध को पाने की इच्छावाले मुमुक्षु-
भव्यात्माओं के कर कमलों में
आत्म-बोध-सार संग्रह
सादर सप्रेम
समर्पित



सम्पादक

अनुक्रमणिका

—०●०—

———॥०॥———

❀ दो शब्द ❀

प्रस्तुत आत्मबोध सार संग्रह पूज्येश्वर गुरुदेव की परम दया से एवं साध्वी श्रेष्ठा श्रीमती जतनश्रीजी महोदया की सफल प्रेरणा से प्रकाशित हो रहा है। इसमें पूर्वाचार्यों की रचनायें संग्रहीत हैं। पूज्येश्वर गुरुदेव ने महोपाध्याय श्री समयसुन्दरजी म० की श्रावक आराधना का अनुवाद कर देने की महती कृपा की है। पाठकगण नित्य पठन द्वारा यथोचित लाभ उठावें और आत्मबोध प्राप्त करें। इसकी आय ज्ञान प्रकाशन में लगेगी।

निवेदक—
मन्त्री—श्री हरिसागर जैन पुस्तकालय
लोहावट [मारवाड]



॥ अर्हम् ॥

श्रीसुखसागर भगवज्जिनहरिपूज्येभ्योनमः ।

श्रीआत्मशिक्षाभावना ।



॥ दोहा ॥

श्री जिनवर मुख वासिनी, जगमे ज्योतिप्रकाश ।
पद्मासन परमेश्वरी, पूरे वांछित आश ॥ १ ॥
ब्रह्मसुता गुण आगला, कनक कमण्डलु सार ।
वीणा पुस्तक धारिणी, तु त्रिभुवन जयकार ॥ २ ॥
श्री सरस्वती पाय नमि, मन धरि हर्ष अपार ।
आतम शिक्षा भावना, भणु सुणो नर नार ॥ ३ ॥
रे जीव सुण तु बापडा, हिये विमासी जोय ।
आप स्वारथी सहु मल्यु, तारक नहीं जग कोय ॥ ४ ॥
धर्म विना सुण जीवडा, तु भम्यो भव अनन्त ।
मूढपणे भव ते किया, इम बोले भगवन्त ॥ ५ ॥
लाख चोरासी योनि मा, फरी लियो अवतार ।
एकेकी योनी वली, अनन्त अनन्ती वार ॥ ६ ॥
चउद राज परमाणुआ, सूई अग्रभाग ठाम ।
कर्मवशे जीव तु भम्यो, मूरख चेतन नाम ॥ ७ ॥

निगोद सूक्षम वादरे, पुद्गल अनंत अपार ।
एतो काल तुं तिहां रह्यो, हिवे कर हिये विचार ॥ ८ ॥
श्वासो उच्छ्वासा एकमां, मरण सतर अध कीध ।
सूक्ष्म निगोदमांहे वली, ए जिन वचन प्रसिद्ध ॥ ९ ॥
नरय·विगलेंद्री तिर्यंच गति, भवकीया वहु हेव ।
भवनपति व्यंतर ज्योतिषी, और विमानिकदेव ॥ १० ॥
इम भमतां भमतां लियो, मनुअ जनम अवतार ।
मिथ्यात्वपणे भव निर्गम्या, काज न सीध लगार ॥११॥
जागमांजीव अछे वहु, एक शुं अनंतीवार ।
विविध प्रकार सगपण किया, हैया साथ विचार ॥१२॥
तो कुण आपणुं पारकुं, कुण वेरी कुण मित्त ।
राग द्वेष टाली करी, कर समता इक चित्त ॥ १३ ॥
पूर्व कोडिने आउखे, ज्ञानी गुरुह अपार ।
उत्पत्ति कहि जीव ताहरी, कहतां नावे पार ॥ १४ ॥
पुत्र पितापणे अवतरे, पिता पुत्रपण जोय ।
माता सगपण नारि मली, नारी माता होय ॥ १५ ॥
सूतो सुपन जंजालमां, पाम्यो जाणे राज ।
जब जाग्यो तब एकलो, राज न सीझे काज ॥ १६ ॥
तिम ए कुटुंब सहु मल्युं, खोटी माया जाल ।
आयु पहोंचे आपणे, खिण थाये विसराल ॥ १७ ॥
सोदो लेयण जण-मिले, जिहां जोडी सहि हाट ।

घाय साकु विसमाय करी, फरि चाल्या निज वाट ॥ १८ ॥
तिम भव भमता सवि मल्या, कुटुंब जोडि जो हाट ।
पुण्य पाप विसमाय करी, जो ऊतरिये घाट ॥ १९ ॥
इम कुटुंब मिल्यु कारिमु, माय अने वलि ताय ।
बंधु भगिनि भारजा, को केहनो न कहाय ॥ २० ॥
नव नव नाटक तु वली, नाच्यो करि बहु रूप ।
नाटक एहवु नाचिये, जो छुटे भव कूप ॥ २१ ॥
उत्तम कुल नरभव लही, पामि धर्म जिनराय ।
प्रमाद मूकी कीजिये, खिण लाखीणो जाय ॥ २२ ॥
जिसु कीजे तिसु पाईये, करे तैसा फल जोय ।
सुख दुख आप कमाइये, दोष न दीजे कोय ॥ २३ ॥
दोष दीजे निज कर्म ने, जिण नवि कीधो धर्म ।
धर्म विना सुख नवि मले, ए जिन शासन मर्म ॥ २४ ॥
बांधी कूरी कोठरी, तो स्यु लुणीये शाल ।
पुण्य विना सवि जीवडा, आशा आल पंपाल ॥ २५ ॥
आयु घटंतो आत्मा, कोइ नवि राखण हार ।
इन्द्र चन्द्र जिनवर वली, गया सवि निरधार ॥ २६ ॥
मोहोटा मोट न कीजिये, न कीजे मोहोटी वात ।
कोडी अनंत में वेचियो, त्यारे किहा गई जात ॥ २७ ॥
आप सरूप विचार तु, जो हुई हियडे शान ।
करणी तेहवी कीजिये, जिम बाधे जग वान ॥ २८ ॥

घड़पण धर्म थाये नहीं, जोबन एले जाय ।
तरुण पणे धसनम करी, पछे फरी पछताय ॥ २९ ॥
जरा आवी जोबन गयुं, शिर पलिया ते केश ।
ललुना तो छोडी नहीं, न कार्यो धर्म लवलेश ॥ ३० ॥
पंचाद्रिये जिहां परवड़ा, रोग जरा नावंत ।
जोबन चंचल आवे सदा, कर तुं धर्म महंत ॥ ३१ ॥
छते हाथ न वावर्यो, संबल न कियो साथ ।
आय गइ मन चेतियो, पछे घसे निज हाथ ॥ ३२ ॥
धन जोबन नर रूपनो, गर्व करे तुं गमार ।
कृष्ण बलभद्र द्वारिका, जलतां न लागी वार ॥ ३३ ॥
आठ पहोर तुं धसमसी, धनार्थे देशांतर जाय ।
सो धन मेल्युं ताहरूं, ओरज कोइ खाय ॥ ३४ ॥
आंख लगे फरूकड़े, ऊथल पाथल थाय ।
इस्युं जाणी जीव वापड़ा, म करिश ममता माय ॥ ३५ ॥
माया सुख संसार मां, ते सुख सहिय असार ।
धर्म पसायें सुख मिले, ते सुख नावे पार ॥ ३६ ॥
नयन फरूके जिहां लगे, तिहां तहारुं सहु कोय ।
नयन फरुकत जब रही, तब तहारुं नाहिं होय ॥ ३७ ॥
पाप कियां जीव तें बहू, धर्म न कियो लगार ।
नरक पड्यो यमकर चड्यो, तिहां करे पोकार ॥ ३८ ॥
कोई दिन राणो राजियो, कोई दिन भयो तुं देव ।

कोई दिन राक तु अवतर्यो, करतो ओरज सेव ॥ ३९ ॥
काई दिन कोडी परिवर्यो, को दिन नहीं को पास ।
को दिन घर घर एकलो, भमे सही ज्युं दास ॥ ४० ॥
को दिन सुखासन पालखी, जेठमची चकडोल ।
रथपाला आगल चले, नित निव करते कलोल ॥ ४१ ॥
को दिन कूर कपूर तु, भावत नहीं लगार ।
को दिन रोटी कारणे, भमता घर घर बार ॥ ४२ ॥
हीर चीर अंग पहेरिया, चुआ चंदन बहु लाय ।
सो तन जतन करत थाँ, क्षिण माही विघटाय ॥ ४३ ॥
सातमे मारे तु शोभतो, कामिनी भोग विलास ।
इक दिन ओही भावशे, रहणो ही वनवास ॥ ४४ ॥
रूपे देव कुमार सम देख मोहे नर नार ।
सो नर खिण एक मा चली बलि जलि होवे छार ॥ ४५ ॥
जे विन घटिय न जावती, सो वरसां सो जाय ।
ते वल्लभ विसरी गयो, ओरहिंसु चित लाय ॥ ४६ ॥
देखत सब जुग जातु हे, थिर न रही सवि कोय ।
इस्यु जाणी भल कीजिये, हियडे विमासी जोय ॥ ४७ ॥
सुरपति सवि सेवा करे, राय राणा नर नार ।
आयु पहोत आतमा, जाता न लागे वार ॥ ४८ ॥
देखत नर अंधा हुवा, ते मोहे विश्वा पाल ।
भण्या गण्या मूरख थया, नरनारी बाल गोपाल ॥ ४९ ॥

रात दिवस निज नारिसुं, तुं रमतो मन रंग ।
जे जोइये ते पूरतो, ऊलट आणी अंग ॥ ५० ॥
सो रामा जीव नाहरी, क्षणमांही विघटाय ।
स्वारथ पहोचत जय रह्यो, नय फरि वैरी थाय ॥ ५१ ॥
समुद्र द्वीप सायर सवे, पामे को नर पार ।
नारी छिद्र चरित्रनो, को नवि पाम्यो पार ॥ ५२ ॥
वह्मा नारायण ईश्वर, इंद्र चंद्र नर कोड ।
ललना वचने लालची, ते रह्या वेकर जोड ॥ ५३ ॥
नारी वदन सोहामणुं, पण वाघण अवतार ।
जे नर एहने वश पड्या, तस लूट्या घर वार ॥ ५४ ॥
हसतमुखी दीसे भली, करती कारमो नेह ।
कनकलता वाहिर जिसी, अंतर पित्तल तेह ॥ ५५ ॥
पहली प्रीत करि रंगसुं, मीठा बोली नार ।
नरने दास करि आपणो, मूके टाकर मार ॥ ५६ ॥
नारी मदन तलावडी, वूड्यो सयल संसार ।
काढणहारो को नहीं, वूडा वूच निवार ॥ ५७ ॥
वीशवसाना जे नरा, कोई नहीं तस वंक
नारी संगति तेहने, निश्चे चढे कलंक ॥ ५८ ॥
मुंज ने चंडप्रद्योतना, दासीपति पाम्या नाम
अभयकुमार बुद्धि आगलो, तेह ठग्यो अभिराम ॥ ५९ ॥
नारी नहीं रे वापडा, पण ये विषनी वेल ।

जो सुख वाछे मुक्तिना, नारी संगति मेल ॥ ६० ॥
नारी जगमां ते भली, जिण जायो पुन्य रतन्न ।
ते मातिने नित पाय नमु, जगमां ते धन धन्न ॥ ६१ ॥
तु पर काम करी सदा, निज काज न करिय लगार ।
अक्षत्र नक्षत्र करिय तु, किम छुटिस भव पार ॥ ६२ ॥
पाप घडो पुरण भरी, ते लीओ शिर भार ।
ते किम छुटिश जीवडा, न करी धर्म लगार ॥ ६३ ॥
इसु जाणी कुड कपट, छल छिद्र तु छांड ।
ते छांडी ने जीवडा, जिन धर्म चित मांड ॥ ६४ ॥
जिण वचने पर दुख हुये, जिण होय प्राणी घात ।
क्लेश पडे निज आतमा, तज उत्तम ! ते वात ॥ ६५ ॥
जिम तिम पर सुख दीजिये, दुख न दीजे कोय ।
दुख देई दुख पामिये, सुख देई सुख होय ॥ ६६ ॥
पर तात निंदा जो करे, कुडा देवे आल ।
मर्म प्रकाशे परतणा, तेथी भलो चंडाल ॥ ६७ ॥
षटमासी ने पारणे, इक सिथ लहे आहार ।
करतो निंदा नवि टले, तसु दुर्गति अवतार ॥ ६८ ॥
छार उपर जिम लीपणु, तिम क्रोधे तप कीध ।
तस तप जप संजम मुधा, एके काज न सिद्ध ॥ ६९ ॥
पूर्व कोडिने आउखे, पाली चारित्र सार ।
सुकृत सुणो सवि तेहनु, क्षणमां होय छार ॥ ७० ॥

पर अवगुण सरसव समो, अवगुण निज मेरु समान ।
कां करे निंदा पारकी, मूरख आपण शान ॥ ७१ ॥
पर अवगुण जिम देखिये, तिम परगुण तुं जोय ।
पर गुण लेतां जीवडा, अखय अजरामर होय ॥ ७२ ॥
क्रोधी नर अच्छे सदा, कहिये जो उलटी रीश ।
ते छोडी दुर आतमा, रहे जोयण पणवीस ॥ ७३ ॥
गुण कीधा माने नहीं, अवगुण मांडी मूल ।
ते नर संगति छांडिये, पग पग मां घा सूल ॥ ७४ ॥
निंदा करे जे आपणी, ते जीवो जगमांय ।
मल मूत्र धोये, परतणां, पछे अधोगति जाय ॥ ७५ ॥
जे मल मूत्र धोए सदा, गुणवंतना निश दीस ।
ते दुर्जन जीवो घणुं, जगमां कोडि वरीस ॥ ७६ ॥
सज्जन दुर्जन किम जाणिये, जब मुख बोले वाण ।
सज्जन मुख अमृत लवे, दुर्जन विषनी खाण ॥ ७७ ॥
नरभव चिंतामणी लही, आले तुं मम हार ।
धर्म करीने जीवडा, सफल करो अवतार ॥ ७८ ॥
सकल सामग्री तें लही, जिण तरिये संसार ।
प्रमाद वशे भव कां गमे कर निज हिये विचार ॥ ७९ ॥
दियो उपदेश लागे नहीं, जो नवि चिंते आप ।
आप स्वरूप विचारतां, छुटी ज सवि पाप ॥ ८० ॥
जिण रस पाप किया तुमे, तिण रस तुं कर धर्म ।

अक्षत्र नक्षत्र भव अनतना, छुटी जे सवि कर्म ॥ ८१ ॥
जिम आऊखा दिन गुणी, वरस मास घडि मान ।
चेति सके तो चेतजे, जो होये हियडे शान ॥ ८२ ॥
धन कारण तु जलफले, धर्म करि थाये सूर ।
अनत भवना पाप सवि, क्षण मा जाये दूर ॥ ८३ ॥
जे रचना दिण ऊगती, ते रचना नहीं साझ ।
इस्यु जाणी रे जीवडा, चेतहि हियडा माझ ॥ ८४
आशा अबर जेवडी, मरणु पगला हेठ ।
धर्म विना जे दिन गया, तिण दिन कीधी वेठ ॥ ८५ ॥
रे जीव सुण तु बापडा, म करिश गर्व गॅवार ।
मूल स्वरूप देखी करी, निज जीवशु तु विचार ॥ ८६ ॥
कर्मे को नवि छुटिये, इन्द्र चन्द्र नरदेव ।
राय राणा मडलिक थली, अवर नरज कुण हेव ॥ ८७ ॥
वरस दिवस घर घर भम्या आदिनाथ भगवत ।
कर्म वशे दुख तिणे लह्या, जे जगमा बलवत ॥ ८८ ॥
पास जिणद प्रतिमा रही, उपसर्ग कियो सुरिंद ।
ते उपसर्ग ने टालियो, पद्मावती धरणीन्द्र ॥ ८९ ॥
काने खीला घालिया, चरणे राधी खीर ।
तेहुने कर्म नड्यो, चौवीशमा श्री वीर ॥ ९० ॥
मल्ली माया तप करी, पाम्या स्त्री अवतार ।
सुरपति कोडी सेवा करी, कर्मनो यह प्रकार ॥ ९१ ॥

पुरुष विषे चूडामणि, भरत नरेसर राय ।
बाहुबलि हार मानावियो, आज लगे कहेवाय ॥ ९२ ॥
कीधां कर्म न छुटिये, जेहनो विषमो बंध ।
ब्रह्मदत्त नर चक्कवई, सोल वरस लगे अंध ॥ ९३ ॥
आठमो सुभूम चक्कवी, ऋद्धि तणो नहीं पार ।
कर्मवशे परिवारशुं, बूडा समुद्र मझार ॥ ९४ ॥
पांच पांडव अतुल बली, नेह भम्या वनवास ।
इस्या पुरुष जगमां बली, दीनपणे फरया निराश ॥ ९५ ॥
राम लखमण जगमां बली, जेहनुं जपे सहु नाम ।
ते वनवास मांहे रह्या, जे बहु गुणना धाम ॥ ९६ ॥
रावण विकट रामे हण्यो, कृष्णे हण्यो जरासंध ।
जराकुमर हरिने हण्यो, देखो कर्म नो बंध ॥ ९७ ॥
निज पुत्री नाते वरी, तस कूखे सुत हेव ।
कर्मवशे जीव ऊपनो, त्रिपृष्ट वासुदेव ॥ ९८ ॥
भमतां भमतां अवतरयो, देवानंदानी कूख ।
ब्यासी रात्रि तिहां रही, कर्मे लह्युं वलि दुख ॥ ९९ ॥
इंद्र अहिल्याशुं जुओ, लुब्ध हुओ सुरदेव ।
ईश्वर देव नचावियो, पारवती पियु हेव ॥ १०० ॥
मासखमण ने पारणे, कूलवालुओ अणगार ।
च्यितवलग्युं संग नारिये, चूकत न लागीवार ॥ १०१ ॥
पांचशे रामा तजी, लीधो संयम भार ।

दश दश नदिषेण बुझवी, नर वेश्या दरबार ॥ १०२ ॥
बाधी तांतण सूत्रना, चिंट्यो आर्द्रकुमार ।
सुत मोहनी वशे रह्यो, पछि लियो सजम भार ॥ १०३ ॥
पचसया मुनि नेमना, और श्री पासना वार ।
भोगकारण सयम ताजि, मांड्या तिणे घरबार ॥ १०४ ॥
नवाणु कोडी कचन तजि, और ताजि आठे नार ।
ते दु कर नित वदिये, श्री जबू अण काल ॥ १०५ ॥
एक कन्या कोडी कचन, ताजि जेणे चालि दूर ।
बयरस्वामि ने वदीये, नित ऊगमते सूर ॥ १०६ ॥
नवाणु पेटी सुरतणी, नित नित होय निर्माल्य ।
नरभव सुरसुख भोगवे, ते शालिभद्र कुमार ॥ १०७ ॥
रत्नकबल्ने कारणे, श्रेणिक आव्यो बार ।
गोख थकी घोली रह्यो, लीयो सजम भार ॥ १०८ ॥
आठ नारी जेणे तजी, ते धन्नो धन धन्न ।
नारी हास्य सयम लीयो, राग्यु ठाम जिणे मन ॥ १०९ ॥
खट् नदन देवकी तणा, भद्दिलपुर सुल्सा नार ।
तास घरे ते उच्छरया, रूपे देवकुमार ॥ ११० ॥
बत्रीस बत्रीस पदमणी, बत्रीस बत्रीस हेम कोड ।
नेम समीप सयम ग्रही, ते वदू कर जोड ॥ १११ ॥
सहस्र पुरपशु सजम लियो, श्री नेमीसर हाथ ।
ते थावच्चा वदिये, मोच्छव कर्यो यदुनाथ ॥ ११२ ॥

बार वरष छठ आंबिल, कीधां शिवकुमार ।
शीयलव्रत सदा धरी, ए पण दुक्करकार ॥ ११३ ॥
कोश्या मंदिर चौमासुं रही, चोरासी चौवीस ।
ते थूलिभद्र मुनि वंदिये, भद्रबाहु गुरु शिष्य ॥ ११४ ॥
कपिला संगे नवि चल्यो, शेठ सुदर्शन चंग ।
शूली सिंहासन थई, सुर करे मनने रंग ॥ ११५ ॥
शिवरमणी ने कारणे, जिण सुख छंड्या देह ।
तस नामदोय चार लीजिये, भविजन सुणजो तेह ॥११६॥
वरस दिवस काउसग्ग कियो, बाहूबल अणगार ।
मानगजेथी ऊतरयो, तब लियो केवल सार ॥ ११७ ॥
गजसुकुमाल शिर सोमले, दीवि धरया अंगार ।
समता पसाये ते वली, पाम्या भवनो पार ॥ ११८ ॥
मेतारज शिर सोनिये, वाधर विंट्यो धरि खेद ।
निजमन ठामज राखियुं, कियो संसार नो छेद ॥ ११९ ॥
सुकोसल सुकुमाल मुनि, वलुरयुं वाघण अंग ।
बापनी जामि मा भखी, शिवपुरि वरि मनरंग ॥ १२० ॥
पूर्वभव प्रिया शियालणी, तिणे भख्यो अवंती सुकुमाल ।
नलिनीगुल्म विमानमां, पाम्या सुख तत्काल ॥ १२१ ॥
पंचशत शिष्य खंधक तणा, घाणी पील्या सोय ।
शिवनयरी शिव पामिया, ए समता फल जोय ॥ १२२ ॥
चिलायति पुत्र नारी शिर, छेदीने कर लीध ।

उपसम संवर विवकथी, कृतकर्म दूरे कीध ॥ १२३ ॥
दिन प्रति सात हत्या करी, अर्जुन माली नाम ।
परिसह देखि क्षमा धरी, पाम्या शिवपुर ठाम ॥ १२४ ॥
मुनिपति मुनि काउसग्ग रहे, अग्नि दाधी देह ।
परिसह सही पदवी वरी, अमर वधू धरि नेह ॥ १२५ ॥
वंश उपर नाटक करी, एलापुत्र कुमार ।
जाति समरण ऊपनु, ज्ञान अनंत अपार ॥ १२६ ॥
कर्म वशे आषाढ मुनि, भरतनु नाटक कीध ।
अनित्य भावना भावता, तिणे लिहीं केवल लीध ॥ १२७ ॥
सुशिष्य पथकर्जा मुनि, गुरु प्रमाद कियो दूर ।
शत्रुंजय अणसण करी, ते बहु गुण सूर ॥ १२८ ॥
चहरौद्र गुरु खधे करी, रजनी कियो विहार ।
शिष्य पण केवल पामियो, तिम गुरु केवलधार ॥ १२९ ॥
षट् मासीने पारणे, ढंढण नाम कुमार ।
मोदक चूरत पामियो, केवल ज्ञान उदार ॥ १३० ॥
षट् खंड राज हेलीं ताजि लीधो संजम भार ।
षट्दश रोग इहा सह्या, श्री सनत्कुमार ॥ १३१ ॥
कूरभावता केवल लहु, कूरगडु अणगार ।
क्षमा खड्ग हाथे धरी, जे मुनिमा सिणगार ॥ १३२ ॥
पंखी प्राणज राखवा करि खंडोखंड देह ।
मेघरथ रायतणे भवे, प्रसन्न हुओ सुर तेह ॥ १३३ ॥

वंदी वीर गुमानसुं, दशार्णभद्र नरसिंह ।
सुरपति पाय लगाडियो, जग राखी जिण लीह ॥ १३४ ॥
प्रसन्नचंद्र काउसग्गमां, कोपी युद्ध करंत ।
कोप शम्यो केवल लह्युं, मोहटो ये गुणवंत ॥ १३५ ॥
अइमंतो सुकुमाल मुनि, वखाण्यो वीर जिणंद ।
इरियावही पडिक्कमतां, केवल लह्युं आणंद ॥ १३६ ॥
वीरजिन वचने थिर रह्यो, श्रेणिक सुत मेघकुमार ।
जातिसमरण पामियो, करि दो नयणां सार ॥ १३७ ॥
हाट वेचाणी चंदना, सुभद्रा चढ्युं कलंक ।
दमयंती नल वियोग लह्यो, एह कर्मनो वंक ॥ १३८ ॥
कलावती कर छेदिया, द्रौपदी काढ्यां चीर ।
अग्नि शीतलसीता करयो, शील गुणे थयुं नीर ॥ १३९ ॥
चंदना चरण मृगावती, खमावि निज अपराध ।
केवल लहि गुरुणी दियो, दो जीव टल्यो विषवाद ॥ १४० ॥
चंद कलंक सायर कर्यो, खारो नीर किरतार ।
नवसो नवाणुं नदी तणो, देखो ए भरतार ॥ १४१ ॥
हरिचंदराय करम वशो, शिर वह्युं डुंब घर नीर ।
कर्म वशे नर सवि नम्या, जे जग बावन वीर ॥ १४२ ॥
गउ ब्राह्मण स्त्री बालक, दृढप्रहारे हत्या कीध ।
चार पोल काउसग्ग रही, षट्मासे केवल लीध ॥ १४३ ॥
मेरू ढले ने ध्रुव चले, सायर लोपे लीह ।

कीधा कर्म न छुटिये, जो ऊगे पश्चिम दीह ॥ १४४ ॥
कीधां कर्म तो छुटिये, जो कीजे जिनधर्म ।
मन वच कायाये करी, ए जिनशासन मर्म ॥ १४५ ॥
कर्म प्रकाशी आपणा, मन शुद्ध आणद पूर ।
सुर गुरु पास अच्छे वली, जाय पाप सवि दूर ॥ १४६ ॥
बलवंत अनंता जे नरा, केइ सुर सुभट जूझार ।
कर्म सुभट जुओ एकले, सवी मनाव्या हार ॥ १४७ ॥
कर्म सुभट विषम विकट, ते वश कियो न जाय ।
जे नर एहने वश करे, हु वदू तस पाय ॥ १४८ ॥
इम जाणीने कीजिये, जिम आतम सुख थाय ।
परजीव दु ख न दीजिये, इम बोल्या जिनराय ॥ १४९ ॥
दान शियल तप भावना, धर्म ना चार ए मूल ।
पर अवगुण बोलत सही, ए सउ थाए धूल ॥ १५० ॥
दान सुपात्रे दीजिये, तस पुण्यनो नहीं पार ।
सुख सपति लहिये घणी, मणि मोती भंडार ॥ १५१ ॥
धन्नो सारथपति जुवो, घृत वोहराव्यु मुनि हाथ ।
दानप्रभावे जीवडो, प्रथम हुवो आदिनाथ ॥ १५२ ॥
दान दियो धन सारथी, आनद हर्ष अपार ।
नेमनाथ जिनवर हुवा, यादव कुल सिणगार ॥ १५३ ॥
कलथीकेरा रोटला, दीधु मुनिवर दान ।
वासुपूज्य भव पाछले, जिनपद लह्यु निदान ॥ १५४ ॥

मुनी भूल्यो एक मारगे, वोहराव्या तस आहार ।
साथ मेल्यो ते सारथी, ते वीर जगदाधार ॥ १५५ ॥
सुलसा रेवती रंगसुं, दान दियो महावीर ।
तीर्थंकर पद पामशे, लहेशे ते भवतीर ॥ १५६ ॥
दाने भोगज पामिये, शियले होय सौभाग ।
तप करि कर्मज टालिये, भावना शिवसुख माग ॥ १५७ ॥
भावना छे भव नाशिनी, जे आपे भवपार ।
भावना वडी संसार मां, जस गुणनो नहीं पार ॥ १५८ ॥
अरिहंत देव सुसाधु गुरु, केवलि भाषित धर्म ।
इसुं समकित आराधतां, छूटि जे सवि कर्म ॥ १५९ ॥
नवपद जापज कीजिये, चउद पूरवनो सार ।
इस्यो मंत्र गुणिये सदा, जे तारे नर नार ॥ १६० ॥
सकल तीरथ नो राजियो, कीजे तेहनी यात्र ।
जस दरिसणे दुर्गति टले, निर्मल थाये गात्र ॥ १६१ ॥
अष्टापद अर्बुदगिरि, समेतशिखर गिरनार ।
पांचे तीरथ वंदिये, मन धरि हर्ष अपार ॥ १६२ ॥
ऋषभ शांति जग नेमि जिन, पार्श्व अने वर्द्धमान ।
पांचे तीरथ प्रणमतां, नित वाधे जिम वान ॥ १६३ ॥
उत्तम नर नारी तणां, नाम कह्यां ए मांय ।
नाम निरंतर लीजिये, जिम सहि आणंद थाय ॥ १६४ ॥
आतम शिक्षा भावना, गुण मणि रयण भंडार ।

पाप टले सवि तेहना, जेह भणे नर नार ॥ १६५ ॥
आतम शिक्षा भावना, जे सुणे हर्ष अपार ।
नवनिधि तस घर मपजे, पुत्र कलत्र परिवार ॥ १६६ ॥
ए सुणता सुख ऊपजे, अग टले सवि रोग ।
ममता रसमा जीवडो, झीले ते निशदीस ॥ १६७ ॥
इगा भव पर भव भव भवे, जिन माग हु रेच ।
मन वच काया ये करी, थो तुम चरणानी सेव ॥ १६८ ॥
ए गुगा जिहा भावशु, तिहा राग वेलाउल थाय ।
आतम शिक्षा नामथी, सुरनर लागे पाय ॥ १६९ ॥
वीर शासन दीपावनो, आणद विमलसूरींद ।
प्रमाद पथ दूरे कर्यो, प्रणमु तेह आणद ॥ १७० ॥
तास शिष्य मुनीसर धणी, श्री विजय दान सूरीश ।
प्रगट महिमा तस जागतो, पाय नमे नर ईश ॥ १७१ ॥
उपशम रसनो कूपलो, तास पट्टधर हीर ।
सकल सूरि शिरोमणि, सायर सम गंभीर ॥ १७२ ॥
हीरविजय गुरु हीरलो, प्रतिबोध्यो अकबर भूप ।
राय राणा सेवा करे, जेहनु अकल स्वरूप ॥ १७३ ॥
म्लेच्छराय जिणे वश कर्यो, जग वर्त्ताव्यि अमार ।
विमलाचल मुक्ता कियो, शासन शोभाकार ॥ १७४ ॥
कुमारपाल प्रतिबोधियो, श्री श्रीहेमसुरींद ।
तिम अकबर गुरु हीरजी, मन धरि अति आणद ॥ १७५ ॥

ध्यान वशे निज पद दियो, निज मन हर्ष अपार ।
विजयसेन सूरिनामथी, नित होय जय जय कार ॥ १७६ ॥
कामकुंभ चिंतामणी, कल्पतरु अवतार ।
ते साधिनी जेह सिद्धिथी, अधिक ए भवि विचार ॥ १७७ ॥
विजयसेन गुरुराय वर, विजय देव सूरींद ।
विजयमान गुरु वांदिये, जिम सूरज उर चंद ॥ १७८ ॥
तपगच्छ वाचक में वरु, विमलहर्ष शिरताज ।
नामें नवनिधि संपजे, दरिसण सीझे काज ॥ १७९ ॥
आतम शिक्षा भावना, तास शिष्य मनरंग ।
प्रेमविजय प्रेमे करी, ऊलट आणी अंग ॥ १८० ॥
श्री रत्न हर्ष विवुध मुझ; बंधु तास पसाय ।
तास सानिध ग्रंथ में कर्यो, मन धरि हर्ष अपार ॥ १८१ ॥
मूढ मति छे माहरी, कवि मम करजो हास ।
कृपा करी मुझ ऊपरे, शोधी करजो खास ॥ १८२ ॥
संवत् सोल बाशठ्ठिए, वैशाख पूनम जोय ।
वार गुरु सहि दिन भलो, एह संवत्सर होय ॥ १८३ ॥
नयर उज्जेणीमां वली, आतम शिक्षा नाम ।
मन भाव धरि ने तिहां करी, सिधां वांछित काम ॥ १८४ ॥
एक शत एशी पांच ए, दोहा अति अभिराम ।
भणे गुणे जे सांभले, तेह लहे शिवठाम ॥ १८५ ॥

॥ आत्म निंदा ॥

हे आत्मन्! हे चेतन! तू केवल दो घड़ी की सामाइक में कुदृष्टि, कुश्रद्धा, अकार्य प्रवर्ती, रस गृद्धिपना इत्यादि खोटी दृष्टि का चिंतवन मत कर, कभी तू सम्यक्त्व मोहनी में, कभी मिश्र मोहनी में, कभी मिथ्यात्व मोहनी में, कभी काम राग में, कभी स्नेह राग में, कभी दृष्टि राग में, कभी कुगुरु में, कभी कुदेव में, कभी कुधर्म में, कभी ज्ञान विराधना में, कभी दर्शन विराधना में, कभी चारित्र विराधना में, कभी मनोदंड में, कभी वचन दंड में, कभी काय दंड में, कभी हास्य में, कभी रति में, कभी अरति में, कभी भय में, कभी शोक में, कभी दुगछा में, कभी कृष्ण लेश्या में, कभी नील लेश्या में, कभी कापोत लेश्या-में, कभी ऋद्धिगारव में, कभी रस गारव में, कभी साता गारव में, कभी माया शल्य में, और कभी नियाणा शल्य में, कभी मिथ्या दर्शन शल्य में लीन रहता है। कभी तेरह काठिये और कभी अठारह पापस्थानक तुझे चारों ओर से घेर रहते हैं। हे आत्मा! तू महा दुष्ट महा दुराचारी एवं महा अमंगलकारी तिथी की पैदाइश

वाला पुण्यहीन रे अज्ञानान्ध ! अघोर पापी ! हे दुष्ट जीव! प्रायः तुझे अनंतानुबंधी क्रोध, अनंतानुबंधी मान, अनंतानुबंधी माया और लोभ की चौकडी खपी नहीं, न तेरे गुणठाणा ही पलटा, और न धैर्यता ही प्राप्त हुई, न तृष्णा दाह मिटी, और न आकुल व्याकुलता ही मिटी। जिस प्रकार समुद्र में लहरें उछलती हैं, उसी प्रकार तुझ में भी तृष्णा की लहरें उछलरहीं हैं। जो तू क्रिया करता है सो शून्य मन से करता है। वास्ते जो समझ के साथ शांत मन से करेगा तब ही तुझे फल देने वाली होगी, शून्य मन से की हुई क्रिया इस प्रकार निरर्थक है जिस प्रकार राख पर लीपा हुआ लीपण। हे चेतन! जो सोगन नहीं ले याने नियम रहित रहे वह पापी है और जो सोगन लेकर जान बूझ के तोड डाले वह महा पापी है। क्योंकि तूने अनंतकाय, अभक्ष, शीलव्रत, चरस, गांजा, अफीम, भांग, तमाखू आदिके सोगन लेकर तोड डाले, अरे! तेरा कहां छुटकारा होगा। अरे चेतन! तूं पुद्गल (शरीर) के वास्ते कितना आकुल व्याकुल बना रहता है? कि मुझे पारस पत्थर (एक प्रकार का पत्थर होता है जिसके लोहा स्पर्श करने से सोना हो जाता है), नव निधान, रसकुंपी (लोहवेधी रस), रसायण, चित्रावेल, अमृत

गुटिका, आदि मिल जाय अथवा देवता को वश करूं या बादशाह होजाऊं, सेठ होजाऊं, सेनापति होजाऊं, इस प्रकार जैसे तैसे करके पौद्गलिक सुखादि उपार्जन करूं, ऐसे अनेक प्रकार के चिन्तवन करता रहता है। और ऐसा होता भी है, क्योंकि इस में गुणस्थानकवाले को भी लोभ का अंत नहीं (लोभ छूटा नहीं) तो तेरी गरज कैसे पूरी हो? अरे चेतन! तू मन में चिंतवन कर रहा है कि मेरा घर, मेरा पिता, मेरा पुत्र, मेरा कुटुम्ब, मेरा शरीर, अरे चेतन! चौरासी लक्ष योनि में फिरकर लाखों घर किये, और फिर करता फिरता है, तो भी तुझे स्थिरता नहीं हुई, संसार में न तो तू किसी का है और न कोई तेरा है। अरे! तेरी उत्पत्ति को तो देख! कि कोई वक्त तो तू माता, कोई वक्त पिता, कोई वक्त पुत्र, कोई वक्त पुत्री, एवं कोई वक्त स्त्री आदि हुआ, अरे! तेरे इस नाच को तो देख कि कितने रूप बदले तो भी तू अपनी चाल छोड़ता नहीं चाहता।

एक ठग की लड़की ने कहा था 'हे माता पिता! मैं इतने पाप करती हूं तो उनका कौन उपभोग करेगा?' तब माता पिता बोले, हे बेटी! जो करेगा सो ही भुगतेगा (भोगेगा) वास्ते हे जीव! धिक्कार हो

इस संसार के रहने में, कोई किसी का नहीं यह मनुष्य जन्म, आर्य देश, आर्य कुल, श्रावक नाम धरानेवाला शरीर, जिनप्रभु का धर्म, अनेक पुण्य के बंध से तो प्राप्त हुआ और ऐसे मनुष्य जन्म को पाकर तूने मूर्ख ब्राह्मण के जैसे चिंतामणीरत्न रूप धर्म को खोदिया, अब तेरी आत्मा की गरज किस तरह पूरी हो? रे चेतन! तू कहता है मैं, परंतु तू कौन? विष्टा (नर्क) में पैदा होकर धीरे २ वृद्धि को प्राप्त हुआ है तथा ईर्षा सहित मान दशा वाले बाहुबलजी थे उनको तो ब्राह्मी सुंदरी सरीखे समझाने वाले मिल गये थे जब समझे किन्तु हे चेतन! ऐसा मान रखने से तेरा क्या हाल होगा? अरे चेतन! तू विचार कर भरत महाराज को कितनी राज ऋद्धि एवं सौभाग्य था वे भी एक वक्त आत्म भावना लाकर विचारने लगे कि अरे! मेरे इस महाराज्य को धिक्कार हो, पाट (सिंहासन) को धिक्कार हो, चक्रवर्ती पदवी को धिक्कार हो, अरे! विषय सुख को धिक्कार हो, जो महाशय व्रत पालते हैं उनको धन्य है, उस धर्म को धन्य है, जो दान देवे वह धन्य है, जो शीयल पाले वह धन्य है, जो तपस्या करता है वह धन्य है, जो भली भावना भाता है वह धन्य है। ऐसी भावना भाने से भरतादिक को केवल ज्ञान, केवल दर्शन हुवा,

अरे जीव ! तू उनकी बराबरी मत कर, क्योंकि वे तो त्रेसठशलाका पुरुष चर्म शरीरवाले चौथे आरे के जीव थे और तू तो पांचवें काल (पंचम आरे) का जीव भरतक्षेत्र का कीड़ा है, कितना फर्क ? अरे चेतन ! कर्म जड़ वस्तु और तू जीव वस्तु है, विचार कर कि जीव जीव से तो हमेशा परिचय करता है, परन्तु तू अजीव से क्या करता है ? । क्योंकि तू निर्बल है और कर्म सबल हैं अरे चेतन ! कर्म ने तो चौदह पूर्वके धारक को भी उठाकर गिराया, ग्यारहवें गुण स्थानक के जीव भुवनभानु केवलीजी, व कमलप्रभ आचार्यजी महाविदेह के मनुष्य जैसों को भी डिगा दिया तो तू किस बाग की मूली है ?

आठ कर्म की एक सौ अट्ठावन प्रकृति होती है- हे प्रभु ! कैसे जीती जा सके ? मोहनी कर्म जिसके पीछे लगा उसे कैसे जीता जाय ? हे चेतन ! चारित्र फौज में निवास कर सद्बोध सेनापतिकी आज्ञा में रह हमेशा आगम से परिचय रख संतोषरूपी गुण ग्रहण करके तृष्णारूपी दाह को निकाल बाहिर कर जिससे तेरी आत्मा का कल्याण हो । धन्य है उन साधु मुनिराजों को जो पांच समिति से समेता, तीन गुप्ति से गुप्त, छ काया के पालने वाले

सात बडे भय हैं, उनको टालने वाले, आठ मद को जीतने वाले, नव ब्रह्मचर्य की वाड की रक्षा करने वाले, दस प्रकार के यति धर्म को उज्ज्वल करने वाले, ग्यारह अंग के पढने वाले, बारह उपांगों को जानने वाले, सदा उदासीन भाववाले, ऐसे चारित्र पालने वाले को धन्य है कि जो प्रभु की आज्ञा में रहकर धर्म का पालन करते हैं। अरे चेतन! तुझे भी कभी उदय होगा? अरे! तुझे होवे कहां से, क्योंकि तू तो संसार में बहुत ही फंसा हुआ है धन्य है उनको कि जो देशव्रती श्रावक हैं, वे प्रतिक्रमण करते हैं, प्रभु की आज्ञा में रह कर धर्म का पालन करते हैं, सवेरे सामायिक करते हैं, तीर्थकरों के दर्शन करते हैं, प्रभु की बारा प्रकार की वाणी को सुनते हैं। देव की (जिन देव की) पूजा, जिन देव की वंदना, दान, तपश्चर्या, शीयल, पर्व के दिन पोसा, सन्ध्या समय देवसी प्रतिक्रमण करते हैं, उस प्रकार हे चेतन! तुझे धर्म कब उदय होगा?

॥ चौपई ॥

सामायिक शुद्ध मन से करो, निंदा विकथा सब परिहरो।
राग द्वेष करो नहीं मन, जिससे छुटे जीव से तन॥

परंतु तुम्हारी सामायिक तो यह है।

॥ चौपई ॥

सामायिक अशुद्ध करो, निंदा विकथा अति ही करो।
राग द्वेष भरा अति मन, कभी न छूटे जीव से तन ॥ २॥
वास्ते सामायिक इस प्रकार करो—

॥ चौपई ॥

सामायिक शुद्ध मनसे करो, निंदा विकथा मठ परिहरो।
पढो गुणो वाचणा सब करो, जिम भव सागर लीला तिरो।

अरे चेतन! तुझे वाचने की आदत कहा? क्योंकि तूने श्रुतज्ञान को बहु मान नहीं दिया, इसलिये तुझ पर ज्ञानावर्णी कर्म का अंधकाररूपी पडदा पडगया है श्रुतज्ञान की जो आराधना करते हैं, और श्रुतज्ञान का जो अति आदर (सत्कार) करते हैं, उनके ज्ञान, दर्शन और चारित्र निर्मल होते हैं, और उन्हीं को ज्ञान की प्राप्ति होती है, जिसको केवल ज्ञान की और केवल दर्शन की प्राप्ति होती है, वे ही मोक्षरूपी लक्ष्मी को वरते हैं, अर्थात प्राप्त करते है। परन्तु हे चेतन! तू इस भरोसे में मत रहना, यह तेरी सामायिक वैसी नहीं है यह सामायिक तो उत्तम पुरुषो ने की है जैसे कि आनद, कामदेव, सख, पुष्कल, पूरणसेठ और चक्रावतसक राजा ने की है।

अरे चेतन! तेरी सामायिक तो यह है—

॥ चौपई ॥

चिंतवन करे गृह कार्य का, निंदा, विकथा, कर खीज रहे।
आर्त्त रौद्र ध्यान मन में धरे, वह सामायिक निष्फल करे॥

सामायिक इस प्रकार करनी चाहिये–

॥ चौपई ॥

अपना पराया सम गिने, कंचन पत्थर सम वड़ धरे।
सचा सम पर रुचि से पढ़, वह सामायिक शुद्ध करे॥

चंद्रावतंसक राजा ने जो सामायिक व्रत का पालन किया वह इस तरह नहीं किया था, कि अपनी आत्मा का भला चाह कर दूसरी आत्मा का बुरा चाहे; उसने पराई आत्मा का बुरा चिंतवन नहीं किया किन्तु स्व-आत्मा को ही बुरा कहा.

अरे चेतन! तू कंचन की तो इच्छा करे और पत्थर को दूर फेंके, सो उससे कंचन की प्राप्ति होना तो दूर रहा उल्टे पत्थर ही मिलेंगे। तू तो झूठ ही बोलता रहा है, यदि तू तेरे गुण ही का चिंतवन करे तो तू अवेदी, अफरसी, अघाती, अविनासी है। यह मेरे दुश्मन, यह मेरे सज्जन, परतु कौन तेरा दुश्मन है? और कौन सज्जन? हे चेतन! तेरे तो आठ कर्मरूपी शत्रु ही वैरी हैं। इसको ज्ञानरूपी आग से भस्म कर दे. जिससे तेरी आत्मा का कल्याण हो. मैं भव्य हूं या अभव्य हूं, या

दूर भव्य हू, या मुझे स्वत ही ससार बहुत दीखता है परन्तु मै तो प्राय अभव्य ही दीखता हू फिर तो ज्ञानी पुरुष जाने अरे चेतन ! सामायिक तो तू करता है, परतु खाज खुजाता, कडके मोडता और निद्रा ले घोर शब्द करता है अरे ! तेरी समायिक तो ज्ञानी स्वीकार करेंगे तब ही फलदायक होगी।

॥ दोहा ॥

आतम निंदा आपकी, ज्ञान सार मुनि कीन।
जो आतम निंदा करे, सो नर सुघड प्रवीन ॥

॥ इति आत्मनिंदा सपूर्ण ॥

श्रावक के तीन मनोरथ

(नीचे लिखे तीन मनोरथो को चितवन करने से निर्जरा होकर ससार का अन्त होता है)

पहिला मनोरथ

बाह्य एव अभ्यतर परिग्रह महा पाप का मूल है, दुर्गति का देने वाला है, काम क्रोध मान माया लोभ विषय और कषाय का स्वामी है, महा दुख का कारण, अनर्थकारी, दुर्गति की शिला, बुरी लेश्या का परि-

णामी है. अज्ञान मोह मत्सर राग और द्वेष का मूल है. दश प्रकार के यति धर्मरूप कल्पवृक्ष को दावानल समान है. ज्ञान क्रिया क्षमा दया सत्य संतोप एवं बोधीबीजरूप समकित का नाश करने वाला है. संयम और ब्रह्मचर्य का घातक है. कुमति दुर्बुद्धिरूप दुख दारिद्र का देने वाला है. सुमति एवं सुबुद्धिरूप सौभाग्य का नाश करने वाला है. तप संयम रूप धन को लूटने वाला है. लोभ क्लेश रूप समुद्र को वढाने वाला है. जन्म जरा और मरण का करने वाला है. कपट का भंडार, मिथ्यादर्शन रूप शल्य युक्त, मोक्ष मार्ग का विघ्नकारी, बुरे कर्म विपाक का देने वाला, और अनंत संसार को बढाने वाला महा पापी है. पांच इंद्री के विषय रूप वैरी की पुष्टि करने वाला, नाना प्रकार की चिंता शोक और खेद को करने वाला है. संसाररूपी गहरी वल्लि का सिंचन करने वाला है. कूड कपट एवं क्लेश का मानो घर है. खेद उत्पन्न करने वाला मन्द बुद्धि का दरिया है. उत्तम साधु निर्ग्रंथों ने भी इसकी निंदा की है. तीनों लोक में तमाम जीवों को इसके सदृश कठोर दुःख देने वाला दूसरा कोई नहीं है. मोहरूपी पाश का प्रतिवन्धक है. इस लोक और परलोक के सुख का नाश करने वाला है. पांच आश्रवका मानो घर है और अनन्त दारुण दुख एवं

भय को देने वाला है सावद्य व्यापार कुवाणिज्य कुकर्मादान का करानेवाला है- अध्रुव अनित्य अशास्वता असार अत्राण अशरण ऐसे जो आरभ और परिग्रह हैं उनको मैं कब छोड़ूगा- वह दिन मेरे लिये धन्य है कि जिस रोज मैं इनको छोड़ू ।

दूसरा मनोरथ

मैं अनागारी होकर दश प्रकार से यति धर्मधारी, नव प्रकार से विशुद्ध ब्रह्मचारी, सर्व सावद्य परिहारी, साधु के सत्तावीस गुण युक्त, पाच समिति तीन गुप्ति से विशुद्ध विहारी, मोटे अभिग्रह का धारी, बयालीस दोप रहित विशुद्धआहारी, सत्तरा प्रकार से सयमधारी, बारा प्रकार से तपस्या करने वाला, अत आहारी, प्रांत आहारी, अरस विरस आहारी, लुक्खा तुच्छ आहारी, अतजीवी, प्रातजीवी, अरसजीवी, विरसजीवी, लुक्ख जीवी, तुच्छजीवी, सर्व रस त्यागी, छ काय प्रतिपालक, निर्लोभी, निस्वार्थी, पक्षी एव हवा के समान अप्रति बद्ध विहारी, वीतराग परमात्मा का आज्ञानुयायी, जिस दिन होऊगा वह दिन मेरे लिये धन्य है ॥

तीसरा मनोरथ

मैं तमाम पापस्थानकों की आलोयणा लेकर निःशल्य हो, सर्वजीव राशी को खमा के, सब व्रत संभालते हुए, अठारह पापस्थानकों को त्रिविध त्रिविध वोसिराता हुआ, पंडित मरण प्राप्त करूं—

चारों आहारों का पच्चक्खाण कर शरीर को आखरी श्वासोश्वास में वोसिराकर तीनों आराधना आराधन करता हुआ, मंगलकारी चार शरण उच्चारण करता हुआ संसार को पीठ देता हुआ मैं पंडित मरण प्राप्त करूं।

अरिहंत देव, दूसरे सिद्ध भगवान, तीसरे साधु महाराज, और चौथा केवली प्ररूपित धर्म को आराधन करते हुये शरीर पर से मोह उतारकर, पादपोपगमन संथारा सहित पांच अतिचार टालते हुए एवं मृत्यु समय जीने मरने की इच्छा रहित मुझे पंडित मरण प्राप्त हो।

॥ तीनों मनोरथ संपूर्ण ॥



॥ अथ चार सरणा ॥

मुझने चार सरणा होजो । अरिहंत सिद्ध सु साधुजी ॥
केवलीए धर्म प्रकाशियो । रत्न अमोलख लाधोजी ॥ मु० १॥
चउगति तणा दुःख छेदवा । समरथ सरणाँ एहजी ॥
पूरव मुनिवर जे हुआ । तिण किया सरणा एहजी ।'मु० २॥
ससार माहे जेह जीवसु ताह सीम सरणा धारजी ॥
गणि समयसुदर इम भणे पामीस पुन्य प्रभावजी ॥ मु० ३॥

॥ इति श्री चार सरणा सपूर्णम् ॥

॥ अथ आलोयण स्तवन ॥

लाख चौरासी जीव खमावीए, मन धरी परम विवेकजी । मिच्छामी दुक्कड दीजिये, गुरु वचन प्रति बुझोजी ॥ लाख० ॥ १ ॥ सात लाख भुदग तेऊ वाऊ, दस चवद वनना भेद जी । षट वीगल सुर तीर नारकी, चार चार चऊनर भेदो जी ॥ लाख० ॥ २ ॥ मुझ वैर नहीं छे कोई सु, सहु सायेमैत्री भाव जी । गणि समय सुदर इम भण पामीस पुन्य प्रभाव जी ॥ लाख० ॥ ३ ॥

॥ इति श्री आलोयण स्तवन सपूर्णम् ॥

॥ अथ आलोयण स्तवन ॥

पाप अठारे जीव परिहरो, अरिहंत सिद्धनी साखजी। आलोयां पाप छुटिये, भगवंत इण परे भाखेजी ॥ पाप० ॥ १ ॥ आश्रव कषाय दोय बंधवा वली, कलह अभ्याखानजी। रति अरति पइसुंण निद्रा माया मोह मिथ्यात जी ॥ पाप० ॥२॥ मन वच कायाए जे किया, मिच्छामी दुक्कडं तेहजी। गणि समय सुंदर इम भणें, जैन धर्म नो मर्म एहजी ॥ पाप० ॥ ३ ॥

॥ इति श्री आलोयण स्तवन संपूर्णम् ॥

॥ अथ वैराग्य पद ॥

धन धन तेह दिन मुझ कदी होसे, हुं पामीस संजम सूधोजी। पूरब ऋषी पंथ चाल सुं, गुरु वचने प्रति वुझोजी ॥ धन० ॥ १ ॥ अंत पंत भिक्षा गऊचरी, रणवगडा में संचर सुंजी। समता भाव शत्रु मित्रसुं संवेग सूधो धरसुंजी ॥ धन० ॥ २ ॥ संसारना संकट थकी, हुं छूटीस जिनवचने संसारजी। गणि समय सुंदर इम भणें, हुं पामीस भवनो पारजी ॥ धन० ॥ ३ ॥

॥ इति श्री वैराग्य पदं संपूर्णम् ॥

॥ अथ श्री आलोयण स्तवन ॥

(देशी–चउपदनी)

आदीश्वर पहिलो अरिहंत, भय भंजण सामी भगवंत। युगला धरम निवारण हार, मन वंछित दौलत दातार ॥१॥ चौरासी लख जाति मझार, कीधा पाप अनंती वार। ते जिनवर तु जाणे सही, तो पिण आलोउ मुख कही ॥२॥ पूरब पाप तणे परकार, पाम्यो नीच कुले अवतार। काज अकाज किया जेतला, भव भवना दाखु तेतला ॥३॥ जलचर थलचर पखी जीव, मार्या में पाडता रीव। रात दिवस आहेडे रम्यो, मृग मारेवा वन में भम्यो ॥४॥ रिण में हाथ ग्रही हथियार, सुभटा रा कीधा संहार। विण अपराधे घाल्या घाव, पिण पापी न कियो पछताव ॥५॥ पुर पाटण पर जाल्या गाम। वनदव दीधा ठामो ठाम। भील भवे कीधा बहु पाप, सघला जाणे तु माय बाप ॥६॥ पेट भरेवा पातक कीयो, हणला जीव घणु हरखियो। हिंसा दोष विचार्यो नहीं। धवलो लेतो जाण्यो दही ॥७॥ हंस मोर मारस ने चास, रोज हिरण वलि पाड्या पास। वारी करी हाथी झालिया, इण विधि पातक बहुला किया ॥८॥ माकड जू लावड नाखिया, वीछु पकडी ने राखीया। मकोडा मारया घीवेल, बिल में ऊनो पाणी रेल ॥९॥ माखी ईली ने

अलसिया, क्रीड़ी गादहीया गौमिया। सीप कातरा वली चूडेल, वरसाले नाख्या पगवेल ॥ १० ॥ मंजारी राखी घर जाण, ऊंदर मरता न धरी काण। कुत्ता पाली मोटा किया, असती पोषण न विचारिया ॥ ११ ॥

॥ ढाल १ ॥

कपूर हुवे अति ऊजलोरे ॥ एदेशी ॥

खांडण पीसण राधणेर, सोवण जीमण ठाम। पडिकमणे जल उपरे रे, देहरासर हित कामरे ॥ जिनवर साँभल एह अरदास (ए आंकाणि)॥ १२ ॥ आठे ठामे चन्दुआरे, वांध्या नहीरे लिगार। शक्ति छतां धन खर्चतारे आण्यो लोभ अपाररे ॥ जि० ॥ १३ ॥ किधी चौरी पारकी रे, पाडी धाड अपार। परनी थापण आलवी रे, न धर्यो पाप लिगार रे ॥ जि० ॥ १५ ॥ हासे भय क्रोध करी रे, बोल्या मृषावाद। परना गुण देखी करी रे, आण्यो मन विषवाद रे ॥ जि० ॥ १५ ॥ सारो दिन राते रह्यो रे, परनारी ने संग। साते कुविसन सेवियारे, पापी ने परसंगरे ॥ जि० ॥ १६ ॥ पांचेइन्द्री मोकली रे, मूकि जिण तिणा ठाम। भोले पिण राख्यो नहीं रे, हियडे जिनवर नामरे ॥ जि० ॥ १७ ॥ व्रत लेइ भाज्यां वली रे न धरी गुरुनी काण। समकितशुद्ध न राखियो रे, चित्त न धरी जिनवाणरे ॥ जि० १८ ॥ अभक्ष अथाणां मद

भखयारे, रात्रि भोजन कीध कंद मूल टाल्या नहीं रे, अणगल पाणी पीध रे ॥ जि० ॥१९॥ मधु माखण ने मांस नो रे, टालो न कर्यो कोइ। जीभ सवादे जीव ने रे, लागा पातिक मोइ रे ॥ जि० २० ॥ माले पखी मारिया रे, इडा फोड्या कोड, ते दूषण लागा घणारे आलोवु कर जोड रे ॥ जि० ॥ २१ ॥ बाल विछाह्यो मात ने रे, पाम्यो कर्म विशेष। गाय न मेली वाछडी रे,पाम्या पातक देख रे ॥ जि० ॥ २२ ॥

॥ ढाल २ ॥

सीखण सीखण चेलणा ॥ ए देशी ॥

गाम मुकाते मेलिया, अकरा कर कीध। लोभ करी जन मारिया, कुडा आलज दीध ॥ अवधारो प्रभु विनती ॥ ए आंकणी ॥ तारो ससार परम दयाल कृपा करो मति राखो विचार ॥ अ० ॥ २४ ॥ मोटा रुख छेदाविया, कीधा आरभ। हाट हवेली करावियां, थाप्या मोटा थभ ॥ अ० ॥ २५ ॥ रागण पास मडावियां, निवाह अनेक। घाणी करावी अतिघणी, राख्यो न विवेक ॥ अ० ॥ २६ ॥ निंदा करता पारकी, दिन रात गमाया। भोला माणस भोलव्या, करी कूडी माया ॥ अ० ॥ २७ ॥ लोहराछ वेच्या घणा, न करी काई जयणा। धाहुकार पढावियां, दीधा

नहीं देणां ॥ अ० ॥ २८ ॥ करसण कुआ वावडी, वलि सुड ने दाण । पाप करी पोतो भर्यो धरतो मद माण ॥ अ० २९ ॥ कुड़ा माप कराविया, कीधा कुडा तोल । घीने तेल भेला किया, देखी वहु मोल ॥ अ० ॥ ३० ॥ चाडी करतां परतणी, जमवारो हार्यो । खाधी लांच जिहां तिहां, मन मूल न वार्यो ॥ अ० ॥ ३१ ॥ आपण पौ वखाणियो, निर्गुण तज लाज । मात पिता मान्या नहीं, करता निज काज ॥ अ० ॥ ३२ ॥ देव अने गुरु धर्मनी, न करी कांइ आण । धरम ठाम पातिक कियो, न धरी जिन आण ॥ अ० ॥ ३३ ॥ सात क्षेत्रे धन खरचतां, किधी कृपणाई । आप सवारथ राचते, केइ वात वणाई ॥ अ० ॥ ३४ ॥ सरवर द्रह जल सोसियां, लाख वाणि कीधा । दंत केस रस विणजतां, लखपातिक लीधा ॥ अ० ॥ ३५ ॥ साजी सात्रू ने गुली, वलि सोमल खार । कुविणज करतां किम हुवे, स्वामी छूटक वार ॥ अ० ॥ ३६ ॥ टंकण लूंण मोलाविया, आगर में जाय । लिहाला लेई वेचतां, किम जयणा थाय ॥ अ० ॥ ३७ ॥ पून्य ठाम आवी करी, विकथा परमाद । धर्म लेश सुण्यो नहीं, कीयो मोटो वाद ॥ अ० ॥ ३८ ॥

॥ ढाल ३ ॥

इम अनरथ दंड लगाया रे, पिण थारे सरणे नाया ।

सुलिया धानज लीधारे, पीसण जोया विण दीधारे ॥३९॥ काचा फल तोडी खाधारे, पर जीव न जाणी बाधारे। विसया स्वादे मातोरे, में काल न जाण्यो जातोरे। ४०॥ सयम लेई नवि पाल्योरे, पोतानो जनम विटाल्यारे। इमि दूषण लागारे, तप करने केह भागारे ॥ ४१ ॥ लोभे करी पाप उपायारे, तप सयम मूल गमायारे। जिण जिणसु माया मडीरे, धर्म सेती मैं मति छडीरे ॥ ४२ ॥ गुर पुस्तक विनय न कीधोरे, तिण कारज को नवि सिद्धोरे। लोभे करी चित्त लपटाणोरे, माखी मधु जेम भराणोरे ॥४३॥ पातिक कर परिग्रह सच्योरे, वाते कर जन मन वच्योरे ते अनरथ मूल न जाण्योरे, मन कुमति कदाग्रह ताण्योरे ॥ ४४ ॥ जिन मारग मूल न जाण्योरे, जतने करी बाध्यो ताण्योरे चेलोरे मोहे नडियोरे, तिण पाप अघोरे पडियोरे ॥४५॥ विचरता गौचरी काजेरे, जे दोप कह्या जिनराजेरे। ते दूसण न टले कोइरे, दिन रात पडतर होईरे ॥ ४६ ॥ माणि मोहरा औपधि मत्रेरे, जडी ज्योतिष पारद तत्रेरे। जन रजो बहु धन मेल्यारे, जुआरी जुअट खेल्यारे ॥ ४७ ॥ चचल इद्रि नवि दमियारे, इम एले नरभव गमियारे उपशम रस कांई न आव्योरे, जिन दरशण रिवे पछताव्योरे ॥ ४८ ॥ अपणो मत गाढो पोख्योरे, फोगट पापे करी सोख्योरे।

किरिया में मूल न पाली रे, आलस थी आतमा वाली रे ॥ ४९ ॥ तप वेला ताक्यो ओलो रे, तप करी न सकुं हुं भोलो रे। वलि सूत्र सिद्धान्त न भाणिया रे, दूषण टाल्या के गिणिया रे ॥ ५० ॥ कारज विण परघर जाई रे, बैठो परसंग पराई रे। मुनिवर ने परघर वार्यो रे, मन माहीं ते न विचार्यो रे ॥ ५१ ॥ इम पातिक जाणी दाख्या रे, छाना में कोई न राख्या रे। कहेनांजे चिंता-नावे रे, जे जीव तुमे वे भावे ॥ ५२ ॥ तुं त्रिभुवनतारण मिलियोरे, सघलांरो संशय टलियो रे। मुझ आज मनो-रथ सिधोरे, मैं जन्म कृतारथ कीधोरे ॥ ५३ ॥

॥ कलश ॥

इम आदि जिनवर सदा सुखकर सेवतां संकट टले। करजोड़ करतां वले विनति सकल मन वांछित फले ॥ जिनराज जगगुरु मांनसीसे कमल हरषे हित भणी। अरदास एहवी करी सुपरे सफल भव अपणो गिणी ॥ ५४ ॥

॥ अथ भक्ति मार्ग नो कंटक ॥

राग सोरठ—ताल—लावणी

चादर जीणीरास जीणी—॥ ए देशी ॥

माया डाकण दूरे भागी, जिन गुण मां लय लागी ॥ माया० ॥ संत समागम करीने हुंतो, थयो वैरागीरे।

भव वृद्धिनी कारण माया, समझी मनथी त्यागी ॥ माया० ॥ १ ॥ अनत कालथी साथे रहिने, दुःख आपेछे नागीरे । सतवचन थी दुःख करजाणी, कीधी मैंतो आगी ॥ माया० ॥ २ ॥ अज्ञाने भव वनमा भमता, थयो मोहनरागी रे । शिवपद कारण सरलपणुछे, जोयु हवे मैं जागी ॥ माया० ॥ ३ ॥

॥ अथ भक्ति रहितोने उपालभ ॥

राग झिझोटी—ताल पजाबी ठेको

जिन मुख से नाम न समर्यो, तिन मुख में तेरे धुल परीरे ॥ जिन० ॥ धिक् तेरो जनम जिवीत धिक् तेरी धिक् मानुष की देह धरीरे । जीवित तातमुवो नहीं तेरो क्यो जनम्यों तु पाप करीरे ॥ जिन० ॥ १ ॥ प्रभु नाम बिन रसना कैसी करो इनकी टुकडा टुकडीरे, जिन नेत्रन से नाथ न निरखत तिन नेत्रन में लुणभरीरे । ॥ जिन० ॥ २ ॥ रतनपदारथ जनम मानखो, आवत नहीं सो फेर फरीरे । अब तेरो दाव बन्यो है मूरख करना होय सो ऐसे करीरे ॥ जिन० ॥ ३ ॥ हाथ पसार कीयो नहीं सुकृत, तीरथ सन्मुख डग न भरीरे । 'खीम' कहे तु भूलो आयो तेरी ग्याली खेप परीरे ॥ जिन० ॥ ४ ॥

॥ अथ बारह भावना ॥

आत्मा को वैराग्य वासित बनाने के लिये एकांत स्थान में बैठकर अपने मनमें नीचे लिखी १२ भावना चिंतवन करना चाहिये।

१ अनित्य भावना

"पिता, माता, पुत्र, स्त्री, घर, ऋद्धि, तथा अपना शरीर, धन, जोबन आदि सब पदार्थ" जो कि देखने में आते हैं। ये सब अनित्य हैं। जल के परपोटे के माफिक देखते ही देखते नाश को प्राप्त होते हैं, ऐसा जानकर अनित्य वस्तुपर से राग (मोह) हटाना और नित्य वस्तु पर राग करना याने नित्य वस्तु ग्रहण करना जिनेश्वर भगवान का बताया हुआ धर्म तथा अपनी आत्मा का ज्ञान दर्शनीय हैं और वह हमेशा नित्य है इसलिये धर्म करने के ऊपर राग करना, कि जिससे अपना कल्याण हो॥ १॥

२ अशरण भावना

संसार में जितने भी जीव हैं कोई किसी का शरणागत नहीं है माता, पिता, कुटुम्ब, परिवार कोई किसी का नहीं है क्योंकि आयुष्य पूरी करके जीव जैसे

कर्म उपार्जन करता है, वैसी गति को पाता है वहा अपने किये हुए कर्म उदय होने पर अकेला ही भोगता है उस जगह कोई बचाता नहीं वास्ते हे जीव ? शरणागत कौन और कैसे हो सकता है ? शरणागत तो जिनेश्वर भगवान् का बताया हुवा धर्म ही है कि जो भली प्रकार पाले (आराधन करे) तो दुर्गति में जाने नहीं देवे इसलिये मन वचन और काया से धर्म की आराधना की जाय तो अपना कल्याण हो सकता है ॥ २ ॥

३ एकत्व भावना

एकात मे बैठकर ऐसा विचार करना चाहिये कि हे जीव ! ससार तो असार है, इसमें कुछ सार नहीं है सब स्वार्थ के सगे हैं इसमें अपना स्वार्थ जब तक सिद्ध होता रहेगा, तब तक स्नेह रक्खेंगे और जब स्वार्थ सिद्ध न होगा तो मित्र भी शत्रु हो जावेंगे ऐसा जानकर ससार से उदासीन भाव रखना, पाप से पीछे हटना, कोई भी काम सोचकर करना, अगर सोच विचार कर करेगा तो उसके भव थोडे (कम) होवेंगे, ऐसा उत्तम जीव का लक्षण है इसलिये व्यापार करती वक्त भी विचार करना चाहिये जो करने योग्य हो उसे करना, खराब व्यापार नहीं करना, ताकि थोडे ही भव मे मोक्ष जा सकेगा ॥ ३ ॥

'संवर भावना' कही जाती है संवर भावना वाला जीव संवर में तत्पर हो सकता है ॥ ८ ॥

९ निर्जरा भावना

आत्म प्रदेशों के साथ लगे हुए प्राचीन कर्मों को बाह्य और अभ्यंतर तप द्वारा दूर करना, तप जप ध्यानादि से उन पूर्वकृत कर्मों के विपाकोदय को पैदा ही न होने देना, इस प्रकार के प्रबल पुरुषार्थ को 'निर्जरा' कहते हैं। निर्जरा दो प्रकार की होती है, सकाम और अकाम, समझकर तप आदि के जरिये कर्म का क्षय करना 'सकाम'। बिना समझे या पराधीनपने भूख प्यास आदि दुखों के वेग को सहन करने से जो कर्म निर्जरे जाते हैं भोगे जाते हैं क्षय हो जाते हैं अर्थात् आत्मा से बिछड़ जाते हैं उसे "अकाम" कहते हैं। ऐसे चिंतन को 'निर्जरा भावना' कहते हैं। इस प्रकार से चिंतन करता हुआ जीव कर्मों के नाश करने में समर्थ होता है।

१० लोक स्वरूप भावना

कमर पर दोनों हाथों को रखकर और पैरों को फैलाकर खडे हुए पुरुष की आकृति के समान यह लोक है, जिस में धर्मास्तिकायादि छहों द्रव्य भरे पड़े हैं अधोलोक-नरक के पाथड़ों तथा आंतरों का स्वरूप,

मध्यलोक मनुष्यलोक, ऊर्ध्वलोक-बारह देवलोक, नव ग्रैवेयक, पाच अनुत्तर विमान, मोक्ष स्थान इत्यादि विश्वमडल की अनादि रचना का विचार करना 'लोक भावना' कहलाती है। इस प्रकार के चिंतन से इस जीवके तत्वज्ञान की निर्मलता होती है।

११ बोधीबीज भावना

अनादि सिद्ध इस ससार मे नरकादि चारों गतियों में अनन्तकाल से परिभ्रमण करते हुए इस जीवको सब सासारिक वस्तु प्राय अनेक बार प्राप्त हो चुकी है, परतु मिथ्यादर्शन आदि से नष्टबुद्धि वाले ज्ञानावरण दर्शनावरण मोह और अतराय के उदय से पराभव को प्राप्त हुए इस जीवको सम्यग्दर्शन आदि विशुद्धि निर्मल बोधि श्री वीतराग देव के धर्म की श्रद्धा-धर्म की प्राप्ति होना दुर्लभ एव बडी मुश्किल है, इस प्रकार के विचार को 'बोधिदुर्लभ' भावना कहते हैं। बोधिदुर्लभ भावना के चिन्तन से जीव बोधिको प्राप्त करके प्रमादी नहीं होता है।

१२ धर्म भावना.

अहो! परमर्षि अरिहंत भगवंतने संसार समुद्रसे पार उतारने को नावके समान, सम्यग्दर्शन की प्राप्ति द्वारा पंचमहाव्रत, दश प्रकार का यतिधर्म आदि, मुक्ति को प्राप्त करानेवाला कैसा उत्तम धर्म का वर्णन किया है। इत्यादि विचारना 'धर्मभावना' कहाती है। इस प्रकार चिंतव से यह जीव धर्ममार्ग से गिरता नहीं है और धर्म के अनुष्ठान में सावधान होता है।

१३ मित्र भावना.

जगत के जीवों पर दया का चिंतवन करना, सब जीवों को अपने मित्र के समान समझना, कोई के साथ दुश्मनी नहीं रखना ऐसा चिंतवन करना कि सब जीव सुखी होओ, कर्मक्षय करके मोक्ष में जावो, उनके ऊपर दया लाकर अच्छी शिक्षा देना, धर्म सिखाना, धर्म मार्ग बताना, धर्म का अभ्यास करना, ऐसा जान सब जीवों पर दया का चिंतवन करना, हित का उपदेश देना, इस प्रकार जीव दूसरे जीवको साता उत्पन्न करे तो खुद का कल्याण हो।

१४ करुणा भावना

किसी दुःखी जीव को देखकर दया लाना, अपने पुण्य के प्रमाण से उसके दु ख का नाश करना, मरता हुआ देखकर बचाना, अपने से हो सके वहां तक उपकार करना, धर्म मे मन स्थिर करना, दीन, दु खी, बिचारों को ऊंचे चढ़ाना, धर्म का काम परिश्रम पूर्वक करना परोपकार का लाभ बहुत है।

१५ प्रमोद भावना

गुणी जीव को देखकर राग करना, उसको धर्म का उपदेश देना, धर्म का अभ्यास कराना, धर्मी जीव को देखकर उसका अति आदर करना, उसके गुण का चिंतवन करना, नमस्कार करके पैरों पड़ना, गुणी की भक्ति करना, अपनी शक्ति के अनुसार सहायता करना कष्ट को मिटाना, ऐसा करने से उसको सुख होता है अपनी शक्ति के अनुसार दान करना, शक्ति को नहीं छिपाना, क्योंकि पर भव जाने में वह साथ मे सबल है, खूब उपकार करना।

१६ मध्यस्थ भावना.

कोई जीव पापी हो, पाप के काम करता हो, अधर्म करता हो, नीच कर्म करता हो, बुरे व्यापार करता हो, चुगली वगैरः करता हो उसको सिखावण देना, कहना माने तो कहकर पाप से छुड़ाना. यदि कषाय उत्पन्न होतो नहीं कहना, मौन ही रहना, कोई पर राग द्वेष नहीं रखना, अपने ऐसा चिंतवन करना कि यह बिचारा भारी कर्मी जीव है, जिसको जैसी गति में जाना होगा उसको वैसी ही बुद्धि उत्पन्न होगा, ऐसा जानकर अपने मध्यस्थ परिणाम से रहना, खराब रोजगार छोड़ देना, बुरी वाणी नहीं बोलना, बुरे व्यसन (दुर्व्यसन) छोड़ना, बुरे शब्द नहीं बोलना, खराब चलन छोड कर अच्छे चलन चलना, इसके वास्ते धर्म कथा, सिद्धान्त, धर्म मार्ग व्याख्यान वगैरः हमेशा सुनना।

॥ इति श्री भावना सम्पूर्णम् ॥ १६ ॥

॥ अथ पद्मावती आराधना प्रारभ ॥



हवे राणी पद्मावती, जीवराशी खमावे ॥
जाण पणु जगते भलु, इण वेला आवे ॥ १ ॥
ते मुझ मिच्छामि दुकड, अरिहतनी साख ॥
जे में जीव विराधिया, चउराशी लाख ॥ ते० ॥ २ ॥
सात लाख पृथिवीतणा, सात अपकाय ॥
सात लाख तेउकायना, साते वली वाय ॥ ते० ॥ ३ ॥
दश प्रत्येक वनस्पति, चौदह साधारण ॥
बी ति चउरिंदी जीवना, बे बे लाख विचार ॥ ते० ॥ ४ ॥
देवता तिर्यंच नरकी, चार चार प्रकाशी ॥
चउदह लाख मनुष्यना, ए लाख चोराशी ॥ ते० ॥ ५ ॥
इण भवे परभवे सेविया, जे पाप अढार ॥
त्रिविध त्रिविध करी परिहरू, दुर्गतिनां दातार॥ते०॥६॥
हिंसा कीधी जीवनी बोल्या मृषावाद ॥
दोष अदत्तादानना, मैथून उन्माद ॥ ते० ॥ ७ ॥
परिग्रह मेल्यो कारिमो, कीधो क्रोध विशेष ॥
मान माया लोभ मैं कीया, वली राग ने द्वेष ॥ ते० ॥८॥
कलह करी जीव दूहव्या, दीधां कूडां कलक ॥
निंदा कीधी पारकी, रति अरति निशक ॥ ते० ॥ ९ ॥

चाड़ी कीधी चोतरे, कीधो थापण मोसो ॥
कुगुरु कुदेव कुधर्मनो, भलो आण्यो भरोसो ॥ते० ॥१०॥
खाटकी ने भवे में कीया, जीव नानाविध घात ॥
चीड़ीमार भवे चरकलां, मारया दिनरात ॥ ते० ॥ ११ ॥
काजी मुल्लाने भवे, पढी मंत्र कठोर ॥
जीव अनेक झब्भे कीया, कीधा पाप अघोर ॥ ते० ॥१२॥
माछी ने भवे माछलां, जाल्यां जलवास ॥
धीवर भील कोली भवे, मृग पाड्या पास ॥ ते० ॥ १३ ॥
कोटवाल ने भवे में कीया, आकरा करदंड ॥
बंदीवान मरावीया, कोरड़ा छडी दंड ॥ ते० ॥ १४ ॥
परमाधामीने भवे, दीधां नारकी दुःख ॥
छेदन भेदन वेदना, ताडन अति तिख ॥ ते० ॥ १५ ॥
कुंभारने भवे में कीया, नीभाह पचाव्या ॥
तेली भवे तिल पीलिया, पापे पिंड भराव्या ॥ ते० ॥१६॥
हाली भवे हल खेडीयां, फाड्यां पृथ्वीनां पेट ॥
सूड निदान घणां कीया, दीधां बलद चपेट ॥ ते ॥१७॥
माली ने भवे रोपिया, नानाविध वृक्ष ॥
मूल पत्र फल फूलनां, लागां पाप ते लक्ष ॥ ते० ॥ १८ ॥
अधोवाईयाने भवे, भर्या अधिका भार ॥
पोठी पूठे कीडा पड्या, दया नाणी लगार ॥ ते ॥ १९ ॥

ीपा ने भवे क्षेतर्या, कीधा रणण पास ॥
अग्नि आरंभ कीधा घणा, धातुवाद अभ्यास ॥ ते० ॥२०॥
शूरपणे रण जुझता, मार्या माणस वृन्द ॥
मदिरा मांस माखण भख्या, खाधा मूलने कंद॥ते०॥२१॥
खाण खणावी धातुनी, पाणी उलेच्यां ॥
आरंभ कीधा अतिघणा, पोते पापज सच्या ॥ ते ॥२२॥
कर्म अंगार किया वली, दरमें दव दीधा ॥
सम खाधा वीतरागना, कूडा कोसज कीधा ॥ ते० ॥२३॥
बिल्लीभवे उदर लिया, गिरली हत्यारी ॥
मूढ गमार तणे भवे, मँजू लीख मारी ॥ ते० ॥ २४ ॥
भाडभुजा तणे भवे, एकेंद्रिय जीव ॥
ज्वारि चणा गेहुं शेकिया, पाडता रीव ॥ ते० ॥ २५ ॥
खांडण पीसण गारना, आरंभ अनेक ॥
रांधण इंधण अग्निना, कीधा पाप उदेक ॥ ते० ॥ २६ ॥
विकथा चार कीधी वली, सेव्या पांच प्रमाद ॥
इष्ट वियोग पाड्या किया, रुदन विषवाद ॥ ते० ॥ २७ ॥
साधु अने श्रावक तणा, व्रत लहीने भाग्या ॥
मूल अने उत्तरतणां, मुझ दूषण लाग्यां ॥ ते० ॥ २८ ॥
साप वींछी सिंह चीवरा, सकरा ने समली ॥
हिंसक जीव तणे भवे, हिंसा कीधी सबली ॥ ते० ॥२९॥

सूवावडी दूषण घणां, वली गर्भ गलाव्या ॥
जीयाणी ढोल्यां घणां, शील व्रत भंजाव्या ॥ ते ०॥३०॥
भव अनंत भमतां थकां, कीधा देह संबंध ॥
त्रिविध त्रिविध करी वोसिरूं, तिणसुं प्रतिबंध॥ते०॥३१॥
भव अनंत भमतां थकां, कीधा परिग्रह संबंध ॥
त्रिविध त्रिविध करी वोसिरूं, तिणशुं प्रतिबंध॥ते०॥३२॥
भव अनंत भमतां थकां, कीधा कुटुंब संबंध ॥
त्रिविध त्रिविध करी वोसिरूं, तिणशुं प्रतिबंध॥ते०॥३३॥
इणि परे इहभव परभवे, कीधां पाप अखत्र ॥
त्रिविध त्रिविध करी वोसिरूं, करूं जन्म पवित्र ॥ते॥३४॥
एणि विधि ए आराधना, भावे करशे जेह ॥
समयसुंदर कहे पापथी, वली छूटशे तेह ॥ ते० ॥ ३५॥
राग वैराड़ी जे सुणे, एह त्रीजी ढाल ॥
समयसुंदर कहे पापथी, छूटे ततकाल ॥ ते० ॥ ३६ ॥

॥ इति श्री पद्मावती आराधना सम्पूर्णम् ॥

॥ अथ श्री क्षमाछत्रीसी प्रारंभ ॥



आदर जीव क्षमागुण आदर, म करिश राग ने द्वेषजी ॥
समताये शिव सुख पामीजे, क्रोध कुगति विशेष जी ॥ आ० ॥१॥
समता संजम सार सुणीजे, कल्पसूत्रनी साख जी ॥
क्रोध पूर्व कोडि चारित्र बाले, भगवंत इणी पर भाखजी॥आ०॥२॥
कुण कुण जीव तर्या उपसमथी, सांभल तुं दृष्टांत जी ॥
कुण कुण जीव भम्या भवमांहे, क्रोध तणे विरतंत जी ॥आ० ॥३॥
सोमल ससरे शीश प्रजाल्यु, बांधी माटीनी पाल जी ॥
गजसुकुमाल क्षमा मन धरतो, मुगति गयो ततकालजी॥आ०॥४॥
कुलवालुओ साधु कहातो, कीधो क्रोध अपार जी ॥
कोणिक नी गणिका वश पडियो, रडवडियो संसारजी॥आ०॥५॥
सोवनकार करी अति वेदन, बाधरसु वींटियु शीश जी ॥
मेतारज ऋषि मुक्ति पोहोतो, उपशम एह जगीश जी ॥ आ० ॥६॥
कुरुड कुरुड बे साधु कहाता, रह्या कुणाला खाल जी ॥
क्रोध करी ते कुगति पहोता, जनम गमायो आलजी ॥आ०॥७॥
कर्म खपावी मुगते पहोता, खंधक सूरिना शिष्य जी ॥
पालक पापीये घाणी पील्या, नाणी मनमां रीसजी ॥ आ० ॥८॥
अच्चंकारी नारी अत्युग्री, त्रोड्या पीयुसु नेह जी ॥
बब्बर कुल सह्या दुःख बहुला, क्रोध तणा फल एहजी ॥आ० ॥९॥

वाघणे सर्व शरीर विलुस्युं, ततक्षण छोड्यां प्राण जी ॥
साधु सुकोशल शिवसुख पाम्यां, एह क्षमा गुण जाणजी॥आ०॥१०॥
कुण चण्डाल कहीजे बिहुमें, निरति नहीं कहे देवजी ॥
ऋषि चंडाल कहीजे चड़तो, टालो वेढनी टेवजी ॥ आ० ॥११॥
सातमी नरक गयो ते ब्रह्मदत्त, काढी ब्राह्मण आंखजी ॥
क्रोध तणां फल कडुआं जाणी, राग द्वेष द्यो नाखजी ॥ आ०॥१२॥
खंधक ऋषिनी खाल उतारी, सह्यो परिसह जेणजी ॥
गरभवासना दुःखथी छूट्यो, सबल क्षमा गुण तेणजी॥आ०॥१३॥
क्रोध करी खंधक आचारिज, हुओ अग्निकुमारजी ॥
दंडक नृपनो देश प्रजाल्यो, भमशे भवह मझारजी ॥ आ० ॥१४॥
चंद्ररौद्र आचारिज चलतां, मस्तक दीध प्रहारजी ॥
क्षमा करंतां केवल पाम्यो, नव दीक्षित अणगारजी ॥ आ० ॥१५॥
पांच वार ऋषिने संताप्यो, आणी मनमां द्वेषजी ॥
पंच भव सीस दह्यो नंद नाविक, क्रोध तणां फल देखजी॥आ०॥१६॥
सागरचंदनुं शीश प्रजाली, निशि नभसेन नरिंदजी ॥
समता भाव धरी सुरलोके, पहुतो परमानंदजी ॥ आ० ॥ १७ ॥
चंदना गुरुणीये घणुं निभ्रंछी, धिग धिग तुझ अवतारजी॥
मृगावती केवलसिरि पामी, एह क्षमा अधिकारजी ॥ आ० ॥१८॥
सांब प्रद्युम्न कुंवर संताप्यो, कृष्ण द्वैपायन साहजी ॥
क्रोध करी तपनुं फल हार्यो, कीधो द्वारिका दाहजी ॥ आ० ॥१९॥

भरतने मारण मूठी उपाडी, बाहूबल बलवंतजी ॥
उपशम रस मनमाहे आणी, संजम ले मतिमंतजी ॥ आ० ॥२०॥
काउसग्गमा चडियो अतिक्रोधे, प्रसन्नचंद्र ऋषिराजजी ॥
सातमी नरक तणा दल मेल्या, कडुआ तेण कषायजी ॥ आ० ॥२१॥
आहारमाहे क्रोधे ऋषि थूक्यो, आण्यो अमृत भावजी ॥
कूरगडुये केवल पाम्यु, क्षमातणे परभावजी ॥ आ० ॥ २२ ॥
पार्श्वनाथ ने उपसर्ग कीधा, कमठ भवांतर धीठजी ॥
नरक तिर्यंच तणा दु ख लाधा, क्रोध तणा फल दीठजी ॥ आ॥२३॥
क्षमावंत दमदत्त मुनीश्वर, वनमा रह्यो काउसग्गजी ॥
कौरव कटक हण्यो ईंटाले, त्रोड्या कर्मना वर्गजी ॥ आ० ॥२४॥
सय्यापालक काने तरुओ, नाख्यो क्रोध उदीरजी ॥
वेहु काने खीला ठोकाणा, नवि छूट्या महावीरजी ॥ आ० ॥२५॥
चार हत्या नो कारक हुतो, दृढप्रहार अतिरेकजी ॥
क्षमा करी ने मुक्ति पहोतो, उपसर्ग सह्या अनेकजी ॥ आ० ॥२६॥
पहुरमाह उपनतो हाया, क्रोध केवल नाणजी ॥
देखो श्रीदमसार मुनीश्वर, सूत्र गुण्यो उठाणजी । आ० ॥२७॥
सिंह गुफावासी ऋषि कीधो, थूलिभद्र उपर कोपजी ॥
वेश्या वचन गयो नेपाले, कीधो संजम लोपजी ॥ आ० ॥२८॥
चद्रवतंसक काउसग्ग रहियो, क्षमा तणो भंडारजी ॥
दासी तेल भर्यो निशि दीवो, सुरपदवी लह्यो सारजी ॥ आ० ॥२९॥

इम अनेक तर्या त्रिभुवनमें, क्षमागुणे भवि जीवजी ॥
क्रोध करी कुगते ते पहोता, पाडंता मुख रीवजी ॥आ० ॥३०॥
विष हालाहल कहीये विरुओ, ते मारे एक वारजी ॥
पण कषाय अनंती वेला, आपे मरण अपारजी ॥ आ० ॥३१॥
क्रोध करंता तप जप कीधा, न पड़े कांई ठामजी ॥
आप तपे परने संतापे, क्रोधशुं केहो कामजी ॥ आ० ॥ ३२ ॥
क्षमा करंतां खरच न लागे, भांगे क्रोड़ कलेश जी ॥
अरिहंत देव आराधक थाये, व्यापे सुजस प्रदेशजी ॥आ०, ३३॥
नगरमांहे नागोर नगीनो, जिहां जिनवर प्रासादजी ॥
श्रावक लोक वसे अति सुखिया, धर्मतणे परसादजी ॥ आ० ॥३४॥
क्षमा छत्रीसी खांते कीधी, आतम पर उपगारजी ॥
सांभलतां श्रावक पण समझ्या, उपशम धर्यो अपारजी॥आ०। ३५॥
जुगप्रधान जिणचंद सूरीशर, सकलचंद तसु शिष्यजी ॥
समयसुंदर तसु शिष्य भणे इम, चतुर्विध संघ जगीशजी ॥आ०॥३६।

इति श्री क्षमाछत्रीसी संपूर्ण ।

॥ अथ श्री आलोयण छतीसी ॥

ते मुझ मिच्छामि दुक्कड- यह—राग।

पाप आलोय तुं आपणा, सुद्ध आतम साखे।
आलोया पाप छूटिये, भगवत इम भाखे ॥ पा० ॥ १ ॥
सालु हीयाथी काढीजइ, जिम कीधा तेम।
दु ख देखिस नहीतर घणा, रूपी लखमण जेम ॥ पा ॥ २॥
वृद्ध गीतार्थ गुरु मिलै, आतमा सुद्ध कीध।
तौ आलोयण लीजीये, नहीतर स्यु लीध ॥ पा० ३ ॥
ओछउ अधिकौ दे जिके, परकासइ पाप।
लेणहार छूटे नहीं, माम्हउ लागे सताप ॥ पा० ४ ॥
कीधा तिम को कहई नहीं, जीभ लडथडइ झूँठ।
काटो भागउ आगुली, खोटीजे अगुठ ॥ पा० ५॥
गरुर प्रभाव तू मुकिजे, दुसमकाल दुरत।
आतम साख आलोयजे, छेद ग्रन्थ कहन्त ॥ पा० ६ ॥
कर्म निकाचित जे कह्या, ते तो भोगविया छूट।
सिथिल बन्ध बध्या जिके, तिन भोगव्या तूट ॥ पा० ७॥
पृथ्वी पाणी अगिना, वायु वनस्पति जीव।
तेहनो आरम तू करइ, स्वाद लीध सदीव ॥ पा० ८ ॥
आधउ बोलउ बोबडो, मृगापुत्र ज्यु देखी।
अग उपगइ तेहनइ, मारे लोहनी मेखी ॥ पा० ९ ॥

सामाइक पोसा कीया, लीधा साधुना वेस ।
　　पण संवेग थयों नहीं, कहि किम तुं करेस ॥ पा० ३० ॥
सूत्र में प्रकरण समझता, कह्यो विपरीत कोइ ।
　　जण जण मत ते जूजूइ, सुणतां भ्रम होइ ॥ पा० ३१ ॥
वचन जिके वीतरागना, ते तउ सहि साच ।
　　भगवती सूत्र जो जो सहु, वीर नीरावाच ॥ पा० ३२ ॥
कर्मादान पनरइ कह्या, वलि पाप अढार ।
　　खिण खिण ते सहु खामिज्यो, संभारि संभार ॥ पा० ३३ ॥
इणभवि परभवि एहवा, कीधा हुवेइ पाप ।
　　नाम संभारीने खामिज्यो, करज्यो पछताप ॥ पा० ३४ ॥
खरच कोई लागस्ये नहीं, देहनै नहीं दु:ख ।
　　पण मन वयराग आणिज्यो, सही पामिस सुख ॥ पा० ३५ ॥
संवत सोल अठाणुये, अहमदपुर माहि ।
'समयसुन्दर' कहै मइ करी, अलोयण उछाहि ॥ पा० ३६ ॥

इति श्री आलोयण छतीसी सम्पूर्ण ।

अथ सर्व पापादिक आलोयण स्तवन

बेकर जोडी वीनवुजी, सुणि स्वामी सुविदीत ।
कुड कपट मूकी करीजी, वात कहू आप वीत ॥ १ ॥
कृपानाथ मुझ वीनती, अवधार ॥ टेक ॥
तु समरथ त्रिभुवन घणीजी, मुझने दुत्तर तार ॥ कृ० २ ॥
भवसायर भमतां थकां जी, दीठा दुःख अनन्त ।
भाग सयोगे भेटियाजी, भय भंजण भगवंत ॥ कृ० ३ ॥
ज दुःख भाने आपणोजी, तेहने कहीये दुःख ।
पर दुःख भजण तु सुण्योजी, सेवक ने द्यो सुख ॥ कृ० ४ ॥
आलोयण लीधा पखेजी, जीव रुले संसार ।
रुपी लक्ष्मणा महासतीजी, एह सुणो अधिकार ॥ कृ० ५ ॥
दूषम काले दोहिलो जी, सुधो गुरु सयोग ।
परमारथ पीछे नहीं जी, गडर प्रवाही लोग ॥ कृ० ६ ॥
तिण तुम आगल आपणा जी, पाप आलोऊं आज ।
माय बाप आगल बोलता जी, बालक करी लाज ॥ कृ० ७ ॥
जिनधर्म [?] गह [?] वहजी, थापे अपनी वात ।
समाचारी जुइ जुइजी, समय पड मिथ्यात ॥ कृ० ८ ॥
जाण अजाण पणे करीजी, बोल्यो उत्सूत्र बोल ।
रतन चाल उदारतां जी, हाथी रतन निटोल ॥ कृ० ९ ॥

भगवंत भाण्यो ते किहांजी, किहां मुझ करणी एह ।
गज पाखर खर किम सहैजी, सबल विमामण तेह ॥ कृ० १० ॥
आप परुं युं आकरोजी, जाणें लोक महत्त ।
पिण न करुं परमादियोजी, मासाहस दृष्टांत ॥ कृ० ११ ॥
काल अनंते मैं लह्याजी, तीन रतन श्रीकार ।
पिण परमादे पाडियांजी, किहां जइ करुं पुकार ॥ कृ० १२ ॥
जाणुं उत्कृष्टी करुजी, उद्यत करुं विहार ।
धीरज जीव धरे नहींजी, पोते बहु संसार ॥ कृ० १३ ॥
सहज पड्यो मुझ आकरोजी, न गमें रुडी वात ।
परनिंदा करतां थकांजी, जाये दिन नें रात ।' कृ० १४ ॥
किरिया करतां दोहिलीजी, आलस आणें जीव ।
धर्म पखै धंधे पड्योजी, नरके करस्ये रीव ॥ कृ० १५ ॥
अणहुंता गुण को कहेजी, तो हरखुं निश दिन ।
को हित सीख भली कहैजी, तो मन आणुं रीश ॥ कृ० १६ ॥
वाद भणी विद्या भणीजी, पर रंजण उपदेश ।
मन संवेग धर्यो नहीं जी, किम संसार तरेश ॥ कृ० १७
सूत्र सिद्धांत वखांणतांजी, सुणतां करम विपाक ।
खिण एक मन मांहिं ऊपजैजी, मुझ मरकट वैराग ॥ कृ० १८ ॥
त्रिविध त्रिविध करी ऊचरुंजी, भगवंत तुझ हुजुर ।
बार बार भांजूं वलीजी, छूटकबारो [illegible] कृ० १९ ॥
आप काज सुख राचितांजी, कीधा आर[illegible]
जयणा न करी जीव[illegible] दय[illegible] ० २० ॥

वचन दोष व्यापक कह्याजी दाख्या अनरथ दंड ।
कूड कपट बहु केलवीजी, व्रत कीधा शत खंड ॥ कृ० २१ ॥
अण दीधो लीजे तिणोजी, तोही अदत्तादान ।
ते दुषण लगा घणाजी, गिणता नावै ध्यान ॥ कृ० २२ ॥
चचल जीव रहे नहींजी राचै रमणी रूप ।
काम विटंबण सी कहुजी ते तू जाने स्वरूप ॥ कृ० २३ ॥
माया ममता म पड्योजी, कीधो अधिको लोभ ।
परिग्रह मेल्यो कारमोजी, न चढी संयम शोभ ॥ कृ० २४ ॥
लागा मुझ ने लालचेजी, रात्री भोजन दोष ।
मै मन मूक्यो माहरोजी, न धर्यो धर्म सतोष ॥ कृ० २५ ॥
इण भव पर भव दूहव्याजी, जीव चोरासी लाख ।
ते मुझ मिच्छामि दुक्कडजी, भगवंत तोरी साख ॥ कृ० २६ ॥
करमादान पनर कह्याजी, प्रगट अढारे पाप ।
जे मैं कीधा ते सहूजी, बगस २ माई बाप ॥ कृ० २७ ॥
मुझ आधार छै एतलोजी, सदहणा छै शुद्ध ।
जिन धर्म मीठो जगत मजी जिम साकर ने दूध ॥ कृ० २८ ॥
रिषभदेव तू राजयोजी, सेत्रुंज गिरि सिणगार ।
पाप आलोया आपणाजी, कर प्रभु मोरी सार ॥ कृ० २९ ॥
मर्म यह जिन धर्मनोजी, पाप आलोया जाय ।
मनशु मिच्छामी दुक्कडजी, देता दुरित पलाय ॥ कृ० ३० ॥
तू गति तू मति तू धणीजी, तू साहिब तू म्हर ।
आण भरू तिर ताहरीजी, भव २ ताहरी सेव ॥ कृ० ३१ ॥

कलश—इम चढीय सेत्तुंज चरण भेट्या, नाभिनंदन जिन तणा ।
कर जोड़ी आदि जिणंद आगे, पाप आलोया आपणा ॥
श्रीपूज्य जिनचंद सूरि सद्गुरु, प्रथम शिष्य सुजशघणो ।
गणि सकलचंद सुशिष्य, वाचक, समयसुंदर गणि भणे ॥

॥ इति आलोयण गर्भित स्तवनम्



॥ अथ श्री वैकुंठ पंथ ॥



वैकुंठ पंथ वीहामणो, दोहिलो छे घाट ।
आपणनो तिहां कोइ नहीं, जे देखाड़े वाट ॥ १ ॥
मार्ग वहे रे उतावलो, उडे झीणेरी खेह ।
कोइ कोइने पडखे नहीं, छांडी जाय सनेह ॥ मार्ग० २ ॥
एक चाल्या बीजा चालशे, त्रीजा चालणहार ।
रात दिवस वहे वाटडी, पडखे नहीं लगार ॥ मार्ग० ३ ॥
प्राणी ने परियाणुं आवियुं, न गणे वार कुवार ।
भद्र भरणी योगिनी, जो होय सामो काल ॥ मार्ग० ४ ॥
जम रूपे विहामणो, वाटे दीये रे मार ।
कृत कमाइ पूछशे, जीवनो किरतार ॥ मार्ग० ५ ॥
लोभे वाह्यो जीवडो, करतो बहु पाप ।
अंतरजामी आगले, केम करीश जवाब ॥ मार्ग० ६ ॥

जे विण घडी मरतो नहीं, जीवन प्राण आधार ।
ते विण वरस वही गया, शुद्ध नहीं समाचार ॥ मार्ग० ७ ॥
आव्यो तु जीव एकलो, जाता नहीं कोई साथ ।
पुण्य विना तु प्राणिया, घसतो जाईश हाथ ॥ मार्ग० ८ ॥
मग कोरी माहे पेशीये, तोहि न मेले मोत ।
चेतणहारा चेतजो, जाशे गोफण गोला मोत ॥ मार्ग० ९ ॥
छत्रपति भुप केइ गया, सिद्ध साधक लाख ।
क्रोड गमे करण आवट्या, अमर कोइ जीव दाख ॥ मार्ग० १० ॥
आपण देखता जग गयो, आपणे पण जाणा ।
ऋद्धि मेली रहशे नहीं, मोहोटा राय ने राणा ॥ मार्ग ११ ॥
दहाडे भरोते आपणे, सहु कोई जाशे ।
धर्म विना तुमे प्राणिया, पडशो नरकवासे ॥ मार्ग० १२ ॥
खरत होय तो खाइये, नहीं तो मरिये भूख ।
आपणनो तिहा कोइ नहीं जेहने कहिये दु ख ॥ मार्ग० १३
आगल हाट न वाणीया, न करे कोइ उधार ।
गाठे होय तो खाइये, नहीं कोइ देअणहार ॥ मार्ग० १४ ॥
निश्चल रहेवु छे नहीं, म करो मोड़ा मोड़ ।
परस्त्री प्रीत न माडिये, एतो महोटी खोड़ ॥ मार्ग० १५ ॥
वस्तु पीयारी मत लीयो, म करो तात पियारी ।
धर्म विना जग जीवने, होशे अने खुआरी ॥ मार्ग० १६ ॥
कूड कपट तमे मत करो, जीव गरानो ठाम ।
जीवदया प्रतिपालजो, जो होय वैंकुठ काम ॥ मार्ग० १७ ॥

मोहोटा मंदिर मालीयां, घर पण घणेरी आथ ।
हीरा माणेक अतिघणा, पण कांइ नावे साथ ॥ मार्ग० १८ ॥
कोडी गमे कुकुर्म कियां, केता कहुं तुम आगल ।
लखे किणिपरे पोहोचीये, प्रभुजीशुं कागल ॥ मार्ग० १९ ॥
आगल वेतरणि वहे, तिहां कोइ न तारे ।
धर्मी तरी पार पामशे, पापी जाशे पायाले ॥ मार्ग० २० ॥
दीठे मार्ग चालीये, न भरीये कूडी साख ।
काल काया पडी जायशे, मशाणे उडशे राख ॥ मार्ग० २१ ॥
जतन करंता जायशे, उडी जाशे सास ।
माटी ते माटी थायशे, ऊपर उगशे घास ॥ मार्ग० २२ ॥
माय बाप ए केहनां, केहनो परिवार ।
पुत्र पौत्रादिक केहनां, केहनी घरनार ॥ मार्ग० २३ ॥
कोइ म करशो, गारवो, धन जोबन केरो ।
अंते उगर्यो कोइ नहीं, आपणथी भलेरो ॥ मार्ग० २४ ॥
महारुं महारुं करतो थको, पड्यो माया ने मोह ।
लोचन बे मीचाणडां, (तव) घणी अनेराइ होय ॥ मार्ग० २५ ॥
जे जिहां ते तिहां रह्युं, चाल्यो एकलो आप ।
साथे संगते बे थयां, एक पुन्य ने पाप ॥ मार्ग० २६ ॥
सुगुरु सुसाधु वंदिये, मंत्र महोटो नवकार ।
देव अरिहंतने पूजीये, जेम तरीये संसार ॥ मार्ग० २७ ॥
शालिभद्र सुख भोगव्यां, पात्र तणे अधिकार ।
खीर खांड घृत वहोरावीयां, पोहोता मुक्ति मझार ॥ मार्ग० २८ ॥

तस घर घोड़ा हाथीया, राजा दीये बहुमान।
दान दया करी दीजिये, भावे साधु ने मान ॥ मार्ग० २९ ॥
धर्मे पुत्रज रुअडा, धर्मे रुडी नार।
धर्मे लक्ष्मी पामीयो, धर्मे जय जयकार ॥ मार्ग० ३० ॥
नव नंद मत्ता मेली गया, डुंगर केरा पाणा।
समुद्रमां थया शखला, राजा नंदना नाणा ॥ मार्ग० ३१ ॥
पुंजी मेली मरि जायशे, खावे खरचवे खोटा।
ते कडाह ऊपर थइ, अवतर्यां मणिधर महोटा ॥ मार्ग० ३२ ॥
माल मेली करी एकठा, खरचे नवि खाय।
लेइ भंडारे भूमिमां, तिहां कोइ काढी जाय ॥ मार्ग० ३३ ॥
मूंजी लक्ष्मी मेलशे, केहने पाणी न पाय।
धर्म कार्य आवे नहीं, ते धूल धाणी थाय ॥ मार्ग० ३४ ॥
जीवता दान जे आपशे, पोते जमशे हाथ।
श्री भगवान एम भांखियु, सहु आवशे साथ ॥ मार्ग० ३५ ॥
दया करी जे आपशे, उलटे अन्नतु दान।
अडसठ तीर्थ इहां अछे, वली गंगास्नान ॥ मार्ग० ३६ ॥
जोगी जंगम घणा थायशे, दु खिया इण संसार।
खीचडी खाये खातशु, साचो जिन धर्म सार ॥ मार्ग० ३७ ॥
खांडानी धारे चालवु, सुणजो ए सार।
परस्त्री मात करी जाणजी, लोभ न करवो लगार ॥ मार्ग० ३८ ॥
कनक कामिनी जेणे परिहरी, त णो कर्म थी छूटा।
मीखारी भमे घणा, बीजा खीचड खूटा ॥ मार्ग० ३९ ॥

पाथरणे धरती भली, ओढण भलुं आकाश ।
शणगारे शीयल पहेरवुं, तेहने मुक्ति नो वास ॥ मार्ग० ४० ॥
उपवास आंबील नित करे, नित अरिहंत ध्यान ।
काम क्रोध लोभ परिहरे, तेहने मुक्ति निशान ॥ मार्ग० ५१ ॥
मनुष्य जन्म पामी करी, जे करशे धर्म ।
सुख सघलां ए संपजे, छूटे सर्वे कर्म ॥ मार्ग० ४२ ॥
धर्मे धन्नज पामीये, धर्म सवि सुख थाय ।
अरिहंत नाम आराधिये, पाप परले जाय ॥ मार्ग० ४३ ॥
खाट पथरणे सुई रहो, खाओ नित्य खाणां ।
एक अरिहंत नाम संभारतां, क्यां वेसे तुझ नाणां॥मार्ग०४४॥
मनसा वाचा कायथी, लीजे भगवंत नाम ।
सुख स्वर्गनां संपजे, सीझे वंछित काम ॥ मार्ग० ४५ ॥
खातां पीतां खरचतां, हुइड़ा म करे खलखंच ।
काया माया कारमी, जोवन दहाड़ा पंच ॥ मार्ग० ४६ ॥
केही सुचंगी वाढीयो, केही सुचंगी नार ।
केते माटी होई रही, केते भये अंगार ॥ मार्ग० ४७ ॥
हंसराजा जब उड़ीयो, तब कोइ न करे सार ।
सगा कुटुंब सहु एम भणे, वही काढो वार ॥ मार्ग० ४८ ॥
मित्र मंत्रादिक तिहां लगे, तिहां लगे स्नेह भरपूर ।
हंसराजा जब चालिया, तब थया सहु दूर ॥ मार्ग० ४९ ॥
जेवो जणियो तेवो काढियो, नवि मांगीयो भाग ।
आगल खोखर हांडली, मांहे अधबलती आग ॥मार्ग०५०॥

पतित पावन प्रभुजी तमे, सुणो हो दीनानाथ ।
 संसार सागर माही बुडता, देजे तुमे हाथ ॥ मार्ग० ५१ ॥
सांभलो स्वामी शामला, मोरी अरदास ।
 हुं मागुं प्रभु एटलुं, देजो वैकुंठ वास ॥ मार्ग० ५२ ॥
अहंकार चित्त न आणीये, केहने गाल न दीजे ।
 काम क्रोध लोभ मारिये, तो अमर फल लीजे ॥ मार्ग० ५३ ॥
करत कमाई जोडिये, केहने दोष न दीजे ।
 विषना फल जो वाविये, तो अमृत फल केम लीजे ॥मार्ग०५४॥
ठति ऋद्धि गरवे नहिं, ते पण मूरख महोटा ।
 ठालो आव्यो भूलो जायशे, आगल पडशे सोटा ॥मार्ग०५५॥
चौराशी लक्ष जीव जोनिमां, फिरिया वार अनंत ।
 मुनि भीम भणे अरिहंत जपो, जिम पामो भव अंत॥मार्ग०५६॥
संवत शोल नव्याणुये, बीज ने बुधवार ।
 आसो मासे गाईयो, छीकारी नगरी मझार ॥ मार्ग० ५७ ॥
भीम भणे सहु सांभलो, मत सचो दाम ।
 जिमणे हाथे वावरो, तो सहि आवशे काम ॥ मार्ग० ५८ ॥
भीम भणे सहु सांभलो, नवि कीजे पाप ।
 ओछो अधिको जे में कह्यो, ते तमे करजो माफ ॥ मार्ग० ५९ ॥

इति वैकुंठ पंथ समाप्त ।



॥ समाधि विचार ॥

दोहा

परमानन्द परमप्रभु, प्रणमुं पास जिणंद ।
वंदु वीर आदे सहु, चउवीसे जिनचंद ॥ १ ॥
इंद्रभूति आदे नमुं, गणधर मुनि परिवार ।
जिन वाणी हैडे धरी, गुणवन्त गुरु नमुं सार ॥ २ ॥
आ संसार असारमां, भमता काल अनन्त ।
असमाधे करी आतमा, किम ही न पाम्यो अंत ॥ ३ ॥
चउगतिमां भमतां थकां, दुःख अनन्तानंत ।
भोगवीयां एणे जीवडे, ते जाणे भगवंत ॥ ४ ॥
कोई अपूरव पुन्यथी, पाम्यो नर अवतार ।
उत्तम कुल उत्पन्न थयो, सामग्री लही सार ॥ ५ ॥
जिन वाणी श्रवणे सुणी, प्रणमी ते शुभ भाव ।
तिणथी अशुभ टल्या घणां, कांइक लही प्रस्ताव ॥ ६ ॥
विरवा भव दुःख भाखीयां, सुखतो सहज समाध ।
तेह उपाधि मिटे हुए, विषय कषाय अगाध ॥ ७ ॥
विषय कषाय टल्या थकी, होय समाधि सार ।
तेण कारण विवरी कहुं, मरण समाधि विचार ॥ ८ ॥
मरण समाधि वरणवुं, ते निसुणो भवि सार ।
अंत समाधि आदरे, तस लक्षण चित्त धार ॥ ९ ॥

जे परिणाम कषायना, ते उपशम जब थाय ।
तेह सरूप समाधिनु, एछे परम उपाय ॥ १० ॥
सम्यग्दृष्टि जीवने, तेहनो सहज स्वभाव ।
मरण समाधि वछे सदा, थिर करी आतम भाव ॥ ११ ॥
अरुचि भई असमाधि की, सहज समाधि सु प्रीत ।
दिन दिन तेहनी चाहना, वरते एहीज रीत ॥ १२ ॥
काल अनादि अभ्यास थी, परिणति विषय कषाय ।
तेहनी शांति जब हुए, तेह समाधि कहाय ॥ १३ ॥
अवसर निकट मरण तणो, जब जाणे मतिवंत ।
तब विशेष साधन भणी, उलसित चित्त अत्यंत ॥ १४ ॥
जैसे शार्दूल सिंह को, पुरुष कहे कोइ जाय ।
सुते क्युं निर्भय हुई, खबर कहुं सुखदाय ॥ १५ ॥
शत्रु की फोजा घणी, आवे छे अति जोर ।
तुम घेरण के कारणे, करती अति घणो शोर ॥ १६ ॥
कित्तेक तुम से दूर है, ते वैरी की फोज ।
गुफा थकी निकसो तुरत, करो संग्राम की मोज ॥ १७ ॥
तुम आगे सब रंक है, शत्रु को परिवार ।
प्राक्रम दाखो आपणु, तुम बल शक्ति अपार ॥ १८ ॥
महंत पुरुष की रीत ए, शत्रु आवे जांही ।
तब ततखीण सन्मुख हुई, जीत लिये खिणमाही ॥ १९ ॥
वचन सुणी ते पुरुषका, उठ्यो शार्दूल सिंह ।
निकस्यो बाहिर ततखिणे, मानु अकल अबीह ॥ २० ॥

गर्जारव करे एहवो, महा भयंकर घोर ।
मानुं मास अषाढ को, इन्द्र धडुक्यो जोर ॥ २१ ॥
शब्द सुणी केशरी तणो, शत्रुको समुदाय ।
हस्ति तुरंगम पायदल, त्राम लहे कंपाय ॥ २२ ॥
शत्रु हृदयमां संक्रम्यो, सिंह तणो आकार ।
तेणे भयभीत थया सहुं, डग ना भरे लगार ॥ २३ ॥
सिंह पराक्रम सहन कुं, समरथ नहिं तिलमात्र ।
जीतण की आशा गई, शिथिल भयां सवि गात्र ॥ २४ ॥
सम्यगदृष्टि सिंह छे, शत्रु मोहादिक आठ ।
अष्ट कर्म की वर्गणा, ते सेनानो ठाठ ॥ २५ ॥
दुःखदायक ए सर्वदा, मरण समय सुविशेष ।
जोर करे अति जालमी, शुद्धि न रहे लवलेश ॥ २६ ॥
करमों के अनुसार एम, जाणी समकित वंत ।
कायरता दूरे करे, धीरज धरे अति संत ॥ २७ ॥
समकित दृष्टि जीवकुं, सदा सरुप को भास ।
जड़ पुद्गल परिचय थकी, न्यारो सदा सुखवास ॥ २८ ॥
निश्चे दृष्टि निहालतां, कर्म कलंक ना कोय ।
गुण अनन्त को पिंड ए, परमाणंद मय होय ॥ २९ ॥
अमूर्तिक चेतन द्रव्य ए, लखे आपकुं आप ।
ज्ञान दशा प्रगट भई, मिट्यो भरम को ताप ॥ ३० ॥
आतमज्ञान की मगनता, तिन में होय लयलीन ।
रंजत नहीं पर द्रव्य में, निज गुण में होय पीन ॥ ३१ ॥

विनाशिक पुद्गल दशा, खीण भगुर सभाव ।
मे अविनाशी अनन्त हू, शुद्ध सदा थिर भाव ॥ ३२ ॥
निज सरुप जाणे इसो, समकित दृष्टि जीव ।
मरण तणो भय नहीं मने, साध्य सदा छे शीव ॥ ३३ ॥
ऐसे ज्ञानी पुरुष के, मरण निकट जब होय ।
तब विचार अतर गमे, करे ते लखिये सोय ॥ ३४ ॥
थिरता चित्त म लाय के, भावना भावे एम ।
अथिर ससार ए कारमो, इणसु मुज नहीं प्रेम ॥ ३५ ॥
एह शरीर शिथिल हुआ, शक्ति हुई सब खीण ।
मरण नजीक अब जाणिये, तेणे नहि होणा दीन ॥ ३६ ॥
सावधान सब बातमे, हुई करु आतम काज ।
काल कृतातकु जीत के, वेगे लहु शिवराज ॥ ७ ॥
रण भभा श्रवणे सुणी, सुभट वीर जे होय ।
ते ततखीण रणमे चड, शत्रु जीते सोय ॥ ३८ ॥
एम विचार हइडे धरी, मूकी सब जजाल ।
प्रथम कुटुम्ब परिवार कु, समझावे सुरमाल ॥ ३९ ॥
सुणो कुटुम्ब परिवार सहु, तुमकु कहु विचित्र ।
एह शरीर पुद्गल तणो, कैसो भयो चरित्र ॥ ४० ॥
देखत ही उत्पन्न भया, देखत विलय ते होय ।
तिण कारण ए शरीर का, ममत न करणा कोय ॥ ४१ ॥
एह ससार असार म, ममता वार अनन्त ।
नव नव भव धारण कर्या, शरीर अनन्तानन्त ॥ ४२ ॥

जन्म मरण दोय साथ छे, छिण २ मरण ते होय ।
मोह विकल ए जीवने, मालम ना पडे कोय ॥ ४३ ॥
मै तो ज्ञानदृष्टि करुं, जाणुं सकल सरूप ।
पाडोशी मैं एहका, नहीं मारुं ए रूप ॥ ४४ ॥
में तो चेतन द्रव्य हुं, चिदानंद मुज रुप ।
ए तो पुद्‌गल पिंड हैं, भमर जाल अंधकूप ॥ ४५ ॥
सडण पड़ण विद्धंसणो, एह पुद्‌गल को धर्म ।
थिती पाके खिण नवी रहे, जाणो एहीज मर्म ॥ ४६ ॥
अनन्त परमाणुं सिली करी, भया शरीर परजाय ।
वरणादिक वहु विध मिल्या, काले विखरी जाय ॥ ४७ ॥
पुद्‌गल मोहित जीवकुं, अनुपम भासे एह ।
पण जे तत्ववेदी होय, तिनकुं नहीं कुछ नेह ॥ ४८ ॥
उपनी वस्तु कारमी, न रहे ते थिर वास ।
एम जाणी उत्तम जना, धरे न पुद्‌गल आस ॥ ४९ ॥
मोह तजी समता भजी, जाणुं वस्तु स्वरूप ।
पुद्‌गल राग न कीजिये, नवि पडिये भवकूप ॥ ५० ॥
वस्तु स्वभावे नीपजे, काले विणसी जाय ।
करता भोक्ता को नहीं, उपचारे कहेवाय ॥ ५१ ॥
तेह कारण ए शरीर सुं, संबंध न माहरे कोय ।
मैं न्यारा एह थी सदा, ए पण न्यारा जोय ॥ ५२ ॥
एह जगत में प्राणिआ, भरमे भूल्या जेह ।
जाणी काया आपणी, ममत धरे अति तेह ॥ ५३ ॥

जब थिती एह शरीर की, काले पूरी होय खीण।
तब सब अति दुःख भर, कर विलाप एम दीन ॥ ५४ ॥
हा हा पुत्र तुं क्यां गयो, मूकी ए सहु साथ।
हा हा पति तुम क्यां गया, मुझकु मूकी अनाथ ॥ ५५ ॥
हा पिता तुम किहां गया, अब कुण करशे सार।
हा बंधव तुम किहां गया, शून्य तुम विण संसार ॥ ५६ ॥
हा! माता तुं किहां गई, अब धरनी रखवाल।
हा बेनी तुं किहां गई, रोतन मूकी बाल ॥ ५७ ॥
मोह विकल एम जीवड़ा, अज्ञाने करी अंध।
ममतावश गणी माहरा, करे क्लेशना धंध ॥ ५८ ॥
इणविध शोक संताप करी, अतिशे क्लेश परिणाम।
करमबंध बहुविध करे, ना लहे तिण विश्राम ॥ ५९ ॥
ज्ञानवंत उत्तम जना, उनका एह विचार।
जगमां कोई किसी का नहीं, संजोगिक सहुभार ॥ ६० ॥
भवमां भमता प्राणिआ, करे अनेक संबंध।
रागद्वेष परिणति थकी, बहुविध बांध बंध ॥ ६१ ॥
वैर विरोध बहुविध करे, तिम प्रीत परस्पर होय।
संबंध जाली मले, भव भव के फिर सोय ॥ ६२ ॥
वन के बीच एक तरु विषे, संध्या समय जब होय।
दश दिशथी आवी मिले, पंखी अनेक ते जोय ॥ ६३ ॥
रात्रि तिहां वासो वसे, मलि पंखी समुदाय।
प्रात काल उठी चले, दशे दिशे तेहु जाय ॥ ६४ ॥

इण विध एह संसार में, सवि कुटुम्ब परिवार।
संबंध सहु आवी मिले, थिती पाके रहे न केवार ॥ ६५ ॥
किसका बेटा बाप है, किसका मात ने भ्रात।
किसका पति किसकी प्रिया, किसकी न्यात ने जात ॥ ६६ ॥
किसका मन्दिर मालीया, राज्य ऋद्ध परिवार।
क्षीणविनासी ए सहु, एम निश्चे चित्तधार ॥ ६७ ॥
इंद्रजाल सम ए सहु, जैसो सुपन को राज।
जैसी माया भूत की, तैसो सकल ए साज ॥ ६८ ॥
मोह मदिराना पान थी, विकल भया जे जीव।
तिनकुं अति रमणिक लगे, मगन रहे सदैव ॥ ६९ ॥
मिथ्यामतिना जोर थी, नवि समझे चितमांय।
कोड़ जतन करे बापड़ो, ए रहेवे को नांही ॥ ७० ॥
एम जाणी त्रण लोक मां, जे पुद्गल पर्याय।
तिनकी हुं ममता तजुं, धरुं समता चितलाय ॥ ७१ ॥
एह शरीर नहीं माहरुं, एतो पुद्गल खंध।
हुं तो चेतन द्रव्य छुं, चिदानंद सुख कंद ॥ ७२ ॥
एह शरीर का नाश थी, मुझको नहीं कांइ खेद।
हुं तो अविनासी सदा, अविचल अकल अभेद ॥ ७३ ॥
देखो मोह स्वभाव थी, प्रत्यक्ष झूठो जेह।
अति ममता धरी चित्तमां, राखण चाहे तेह ॥ ७४ ॥
पण ते राखी नवि रहे, चंचल जेह स्वभाव।
दुःखदायी ए भव विषे, पर भव अति दुःख दाय ॥ ७५ ॥

ऐसा स्वभाव जाणी करी, मुजकु कछु नहीं खेद ।
शरीर,एह असारका, इणविध लहे सहु भेद ॥ ७६ ॥
सडो पडो विध्वंस हो, जलो गलो हुओ छार ।
अथवा थिर थइने रहो, पण मुजको नहीं प्यार ॥ ७७ ॥
ज्ञानदृष्टि प्रगट भई, मिट गया मोह अधार ।
ज्ञान सरुपी आतमा, चिदानद सुखकार ॥ ७८ ॥
निज सरुप निरधारके, मैं भया इनमे लीन ।
काल का भय मुज चित नहीं, क्या कर सके ए दीन ॥ ७९ ॥
इनका बल पुद्‌गल विषे, मोपर चले न काय ।
मैं सदा थिर शास्वता, अक्षय आतमराय ॥ ८० ॥
आत्मज्ञान विचारता, प्रगट्यो सहज स्वभाव ।
अनुभव अमृत कुड मे, रमण करु लही दाव ॥ ८१ ॥
आत्म अनुभव ज्ञानमा, मगन भया अतरग ।
विकल्प सवि दूरे गया, निर्विकल्प रस रग ॥ ८२ ॥
आतम सत्ता एकता, प्रगट्यो सहज स्वरूप ।
ते सुख त्रण जगमे नही, चिदानद चिद्रूप ॥ ८३ ॥
सहजानन्द सहज सुख, मगन रहु निशदिश ।
पुद्‌गल परिचय त्याग के, मैं भया निज गुण ईश ॥ ८४ ॥
देखो महिमा एह को, अद्‌भुत अगम अनूप ।
तीन लोक की वस्तु का, भासे सकल सरूप ॥ ८५ ॥
ज्ञेय वस्तु जाणे सहु, ज्ञान गुणे करी तेह ।
आप रहे निज भाव मे, नहीं विकल्प की रेह ॥ ८६ ॥

ऐसा आतम रूपमें, मैं भया इणविध लीन ।
स्वाधीन ए सुख छोड़ के, वंछु न पर आधीन ॥ ८७ ॥
एम जाणी निज रूप में, रहुं सदा हुशियार ।
बाधा पीड़ा नहीं कछु, आतम अनुभव सार ॥ ८८ ॥
ज्ञान रसायण पाय के, मिट गई पुद्‌गल आश ।
अचल अखंड सुखमें रमुं, पुरणानंद प्रकाश ॥ ८९ ॥
भव उदधि महा भय करुं, दुःख जल अगम अपार ।
मोह मूर्छित प्राणी को, सुख भासे अतिसार ॥ ९० ॥
असंख्य प्रदेशी आतमा, निश्चे लोक प्रमाण ।
व्यवहारे देह मात्र छे, संकोच थकी मन आण ॥ ९१ ॥
सुख वीरज ज्ञानादि गुण, सर्वांगे प्रतिपूर ।
जैसे लूण साकर डली, सर्वांगे रस भूर ॥ ९२ ॥
जैसे कंचुक त्याग थी, विणसत नाहीं भुजंग ।
देह त्यागथी जीव पण, तैसे रहत अभंग ॥ ९३ ॥
एम विवेक हृदये धरी, जाणी शाश्वत रूप ।
थिर करी हुओ निज रूपमें, तजी विकल्प भ्रमकूप ॥ ९४ ॥
सुखमय चेतन पिंड है, सुख में रहे सदैव ।
निर्मलता निज रूपकी, निरखे खिण २ जीव ॥ ९५ ॥
निर्मल जेम आकाशकुं, लगे न किण विध रंग ।
छेद भेद हुये नहीं, सदा रहे ते अभंग ॥ ९६ ॥
तैसे चेतन द्रव्यमें, इनको कबहु न नाश ।
चेतन ज्ञानानंदमय, जड़ भावी आकाश ॥ ९७ ॥

दर्पण निर्मल के विषे, सब वस्तु प्रतिभास।
तिम निर्मल चेतन विषे, सब वस्तु प्रकाश ॥ ९८ ॥
एण अवसर एम जाण के, मैं भया अति सावधान।
पुद्गल ममता छाड के, धरु शुद्ध आतम ध्यान ॥ ९९ ॥
आतम ज्ञान की मगनता, एहीज साधन मूल।
एम जाणी निज रूप में, करु रमण अनुकूल ॥ १०० ॥
निर्मलता निज रूप की, किमही कही न जाय।
तीन लोक का भाव सब, झलके जिनमें आय ॥ १०१ ॥
ऐसा मेरा सहज रूप, जिनवाणी अनुसार।
आतम ज्ञाने पाय के, अनुभव में एकतार ॥ १०२ ॥
आतम अनुभव ज्ञान जे, तेहीज मोक्ष सरूप।
ते छडी पुद्गल दशा, कुण ग्रहे भवकूप ॥ १०३ ॥
आतम अनुभव ज्ञान ते, दुविधा गई सब दूर।
तब थिर थइ निज रूप की, महिमा कहु भरपूर ॥ १०४ ॥
शांत सुधारस कुंड ए, गुण रत्नों की खान।
अनन्त ऋद्धि आवास ए, शिव मन्दिर सोपान ॥ १०५ ॥
परम देव पण एह छे, परम गुरु पण एह।
परम धर्म प्रकाश को, परम तत्त्व गुण गेह ॥ १०६ ॥
ऐसो चेतन आपको, गुण अनन्त भंडार।
अपनी महिमा विराजतो, सदा स्वरूप आधार ॥ १०७ ॥
चिद्रूपी चिन्मय सदा, चिदानन्द भगवान।
शिवशंकर स्वयंभू नमु, परम ब्रह्म विज्ञान ॥ १०८ ॥

एण विध आप सरूप की, लखी महिमा अतिसार ।
मगन भया निज रूपमें, सब पुद्गल परिहार ॥ १०९ ॥
उदधि अनन्त गुणे भर्यो, ज्ञान तरंग अनेक ।
मर्यादा मूके नहीं, निज सरूप की टेक ॥ ११० ॥
अपनी परिणति आदरी, निर्मल ज्ञान तरंग ।
रमण करुं निज रूप में, अब नहीं पुद्गल रंग ॥ १११ ॥
पुद्गल पिंड शरीर ए, मैं हूं चेतन राय ।
मैं अविनाशी एह तो, क्षिण में विणसी जाय ॥ ११२ ॥
अन्य सभावे परिणमें, विण संता नहीं वार ।
तिणसुं मुज ममता किसी, पाडोशी व्यवहार ॥ ११३ ॥
इण की थिती पूरी भई, रहेणे की नहीं आश ।
वरण रस गंध फरस सहु, गिलन लगा चिहुं पास ॥ ११४ ॥
एह शरीर की ऊपरे, राग द्वेष मुज नाहीं ।
राग द्वेश की परिणतें, भमिये चिहुं गति मांही ॥ ११५ ॥
राग द्वेप परिणाम थी, करम बंध बहु होय ।
परभव दुखदायक घणा, नरकादिक गति जोय ॥ ११६
मोहे मुर्च्छित प्राणी कुं, राग द्वेष अति थाय ।
अहंकार ममकार पण, तिण थी शुध बुध जाय ॥ ११७ ॥
महिमा मोह अज्ञान थी, विकल भया सवि जीव ।
पुद्गलिक वस्तु विषे, ममता धरे सदैव ॥ ११८ ॥
परमे निजपणुं मान के, निविड़ ममता चित धार ।
विकल दशा वरते सदा, विकलपनो नहीं पार ॥ ११९ ॥

मं मेरा ए भाव थी, फिर्यो अनंतो काल।
निजवाणी चित परिणम, छुटे मोह जजाल ॥ १२० ॥
मोह विकल एह जीवकु, पुद्गल मोह अपार।
पण इतनी ममने नहीं, इनमें कछु नहीं सार ॥ १२१ ॥
इच्छाथी नवी सपजे, कल्प विपत ना जाय।
पण अज्ञानी जीवकु, विकल्प अतिशय थाय ॥ १२२ ॥
एम विकल्प करे घणा, ममता अध अनाण।
मैं तो जिन वचने करी, प्रथम थकी हुओ जाण ॥ १२३ ॥
मे शुद्धातम द्रव्य हु, ए सब पुद्गल भाव।
सडन पडन विध्वमणो, इनका एह स्वभाव ॥ १२४ ॥
पुद्गल रचना कारमी, विणसता नहीं वार।
एम जाणी ममता तजी, ममता सु मुज प्यार ॥ १२५ ॥
जननी मोह अंधारकी, माया रजनी क्रूर।
भव दुःख की ए खाण है, इणसु रहो ए दूर ॥ १२६ ॥
एम जाणी निज रूप म, रहु सदा गुणवास।
और सब ए भवजाल है, इणसु भया उदास ॥ १२७ ॥
इण अवसर कोई आपके, सुजकु कहे विचार।
कायासु तुम कछु नहीं, एह बात निरधार ॥ १२८ ॥
पण एह शरीर निमित्त है, मनुष्य गति के मांह।
शुद्ध उपयोग की साधना, इणसु बने उछाह ॥ १२९ ॥
एह उपगार विण आण के, इनका रक्षण काज।
उद्यम करना उचित है, एह शरीर के साज ॥ १३० ॥

इनमें टोटा नहीं कछुं, एह केणे की वात ।
तिनसुं उत्तर अब कहु, सुणो सज्जन भलीभात ॥ १३१ ॥
तुमने जो वातां कही, अम भी जाणुं सर्व ।
एह मनुष्य परजाय से, गुण बहु होते निगर्व ॥ १३२ ॥
शुद्ध उपयोग साधन वने, और ज्ञान अभ्यास ।
ज्ञान वैराग्य की वृद्धि को, एही निमित्त है खास ॥ १३३ ॥
इत्यादिक अनेक गुण, प्राप्ति इणथी होय ।
अन्य परजाये एहवा, गुण बहु दुर्लभ जोय ॥ १३४ ॥
पण एह विचार में, कहेणे को ए मर्म ।
एह शरीर रहो सुखे, जो रहे संजम धर्म ॥ १३५ ॥
अपना संजमादिक गुण, रखणा एहीज सार ।
ते संयुक्त काया रहे, तिनमें कोन असार ॥ १३६ ॥
मोकुं एह शरीर सुं, वेर भावतो नाहीं ।
एम करतां जो नवी रहे, गुण रखणा लेउ छांही ॥ १३७ ॥
विघन रहित गुण राखवा, तिण कारण सुण मित्त ।
स्नेह शरीर को छांडिये, एह विचार पवित्त ॥ १३८ ॥
एह शरीर के कारणे, जो होय गुण का नाश ।
एह कदापी ना कीजिये, तुमकुं कहुं शुभ भाश ॥ १३९ ॥
एह संबंध के ऊपरे, सुणो सुगुण दृष्टान्त ।
जीणथी तुम मन के विषे, गुण बहु मान होय संत ॥ १४० ॥
कोइ विदेशी वणिक सुत, फरतां भूतल मांही ।
रत्नद्वीप आवी चढ्यो, नीरखी हरख्यो तांही ॥ १४१ ॥

जाण्यु रत्नद्वीप एह छे, रत्न तणो नहीं पार ।
करु व्यवसाय इहा कणे, मेलवु रतन अपार ॥ १४२ ॥
तृण काष्टादिक मेलवी, कुटि करि मनोहार ।
तिण म ते वासो वसे, करे वणज व्यापार ॥ १४३ ॥
रतन कमावे अति घणा, कुटि मे थापे तेह ।
एम करता कई दिन गया, एक दिन चिता अच्छेह ॥ १४४ ॥
कुटि पास अग्नि लगी, मन म चिंते एम ।
बुझवु अग्नि उद्यम करी, कुटी रतन रहे जेम ॥ १४५ ॥
किण विध अग्नि समी नहीं, तव ते करे विचार ।
गाफल रहेणां अब नहीं, तुरत हुआ हुशियार ॥ १४६ ॥
ए तरना की झुपडी, अग्नि तणे सजोग ।
खीण मे ए जली जायगी, अब कहां इसका भोग ॥ १४७ ॥
रतन समालु आपणा, एम चिंती सवि रत्न ।
लेई निजपुर आवीओ, करतो बहु विध जत्न ॥ १४८ ॥
रतन विक्रीय तेणे पुरे, लक्ष्मी लही अपार ।
मंदिर महेल बनाविया, बाग बगीचा सार ॥ १४९ ॥
सुख विलसे सब जातका, किसी उणम नहीं ताम ।
देवलोक परे मानतो, सदा प्रसन्न सुखवास ॥ १५० ॥
भेद विज्ञानी पुरुष जो, एह शरीर के काज ।
दूषण कोइ सेवे नहीं, अतिचार भी त्याज ॥ १५१ ॥
आतम गुण रक्षण भणी, दृढता धरे अपार ।
देहादिक मूर्छा तजी, सेवे शुद्ध व्यवहार ॥ १५२ ॥

संजम गुण परभाव थी, भावी भाव संजोग ।
महाविदेह क्षेत्रां विषे, जन्म होवे शुभ जोग ॥ १५३ ॥
जिहां सीमंधर स्वामीजी, आदे वीश जिणंद ।
त्रिभुवन नायक सोहता, निरखुं तस मुखचंद ॥ १५४ ॥
केवल ज्ञान दिवाकरु, बहु केवली भगवान ।
वली मुनिवर महा संजमी, शुद्ध चरण गुणवान ॥ १५५ ॥
एहवा उत्तम क्षेत्रमां, जो होय माहरो वास ।
तो प्रभु चरण कमल विषे, निशदिन करुं निवास ॥ १५६ ॥
अति भक्ति बहु मान थी, पूजी पद अरविंद ।
श्रवण करुं जिनवर गिरा, सावधान गत द्वंद ॥ १५७ ॥
समवसरण सुरवर रचे, रतन सिंहासन सार ।
बेठा प्रभु तस ऊपरे, चोत्रीश अतिशय धार ॥ १५८ ॥
वाणी गुण पांत्रीश करी, वरस अमृत धार ।
ते निसुणी हृदये धरी, पामुं भवजल पार ॥ १५९ ॥
निबिड़ कर्म महारोग जे, तिणकुं फेड़णहार ।
परम रसायन जिन गिरा, पान करुं अति प्यार ॥ १६० ॥
क्षायक समकित शुद्धता, करवानो प्रारंभ ।
प्रभु चरण सुपसाय थी, सफल होवे सारंभ ॥ १६१ ॥
एम अनेक प्रकार के, प्रशस्त भाव सुविचार ।
करके चित्त प्रसन्नता, आणंद लहुं अपार ॥ १६२ ॥
और अनेक प्रकार के, प्रश्न करुं प्रभु पाय ।
उत्तर निसुणी तेहना, संशय सवि दुर जाय ॥ १६३ ॥

निसंदेह चित्त होय के, तत्वांतर मरूप ।
भेद यथार्थ पायके, प्रगट करु निज रूप ॥ १६४ ॥
रागद्वेष दोय दोष ए, अष्ट करम जड एह ।
हेतु एह संसार का, तिनको करगो छेह ॥ १६५ ॥
शीघ्रपणे जड मूलथी, रागद्वेष को नाश ।
करके श्रीजिनचंद्र को, निरगुशुद्ध विलाश ॥ १६६ ॥
परम दयाल आणदमय, केवल श्रीसंयुक्त ।
त्रिभुवनमे सूरज परें, मिथ्या तिमिर हरत ॥ १६७
एहवा प्रभुकु देख के, रोम रोम उलसत ।
वचन सुधारस श्रवणते, हृदय विवेक वधत ॥ १६८ ॥
श्री जिन दरिशन जोगथी, वाणी गंग प्रवाह ।
तिण थी पातिक मल सवे, धोइस अति उछाह ॥ १६९ ॥
पवित्र थई जिन देव के, पासे लेशु दीख ।
दुर्धर तप जगी करु, ग्रहण आसेवन शीख ॥ १७० ॥
चरण धरम परभावथी, होशे शुभ उपयोग ।
शुद्धातम की रमणता, अद्भुत अनुभव जोग ॥ १७१ ॥
अनुभव अमृत पान मे, आतम भय लयलीन ।
क्षपक श्रेणी के सनमुखे, चढण प्रयाण ते कीन ॥ १७२ ॥
आरोहण करी श्रेणी कु, घाती करम को नाश ।
घनघाती छेदी करी, केवल ज्ञान प्रकाश ॥ १७३ ॥
एक समय त्रण काल के, सकल पदारथ जेह ।
जाणे देखे तत्वथी, सादि अनंत अच्छेह ॥ १७४ ॥

एही परम पद जाणीये, सो परमातम रूप ।
शाश्वत पद थिर एह छे, फीरी नहीं भवजल कूप ॥ १७५ ॥
अविचल लक्ष्मी को धणी, एह शरीर असार ।
तिनकी ममता किम करे, ज्ञानवंत निरधार ॥ १७६ ॥
सम्यक्‌दृष्टि आतमा, एण विध करी विचार ।
थिरता निज स्वभाव में, पर परिणति परिहार ॥ १७७ ॥
मुजकुं दोनुं पक्ष में, वरते आणद भाय ।
जो कदी एह शरीर को, रहणो कांइक थाय ॥ १७८ ॥
तो निज शुध उपयोग को, आराधन करुं सार ।
तिनमें विघन दीसे नहीं, नहीं संक्लेश को चार ॥ १७९ ॥
जो कदी थिति पूरण भई, होये शरीर को नाश ।
तो परलोक विषे करुं, शुध उपयोग अभ्यास ॥ १८० ॥
मेरे शुद्ध उपयोग में, विघन न दीसे कोय ।
तो मेरे परिणाम में, हलचल कांहसुं होय ॥ १८१ ॥
मेरे परिणाम के विषे, शुद्ध सरूप की चाह ।
अति आशक्त पणे रहे, निशदिन एहीज राह ॥ १८२ ॥
ए अशक्ति मिटाववा, ब्रह्म विष्णु महेश ।
आदि कोई समरथ नहीं, तेणे करी भय नहीं लेश ॥ १८३ ॥
इन्द्र धरणेन्द्र नरेन्द्रका, मुजकुं भय कछु नांहीं ।
या विध शुद्ध सरूपमें, मगन रहुं चित्त मांही ॥ १८४ ॥
समरथ एक महाबली, मोह सुभट जग जाण ।
सवी संसारी जीवकुं, पटके चिहुं गति खाण ॥ १८५ ॥

दुष्ट मोह चंडाल की, परणित विषम विरूप।
सजमधर मुनि श्रेणीगत, पटके भवजल कूप ॥ १८६ ॥
मोह करम महादुष्ट कु, प्रथम थकी पहिछाण।
जिन वाणी महामोगरे, अतिशय कीध हेरान ॥ १८७ ॥
जरजरीभूत हुई गया, नाठा मुजसु दूर।
अब नजीक आवे नहीं, दुरपे मुजसु भूर ॥ १८८ ॥
तेणे करी मैं नचिंत हु, अब मुज भय नही कोय।
त्रणलोक प्राणी विषे, मित्र भाव मुज होय ॥ १८९ ॥
सुणो सज्जन परिवार तुम, सभालोक सुणो वात।
मरणे का भय नही मुज, एह निश्चे अवदात ॥ १९० ॥
अवसर रही अब मैं भया, निर्भय सर्व प्रकार।
आतम साधन अब करु, निसदेह निरधार ॥ १९१ ॥
शुद्ध उपयोगी पुरुष कु, भासे मरण नजीक।
तब जंजाल सब परिहरी, आप होवे निरभीक ॥ १९२ ॥
एणी विध भाव विचार के, आणद मय रहे सोय।
आकुलता किणविध नहीं निराकुल थिर होय ॥ १९३ ॥
आकुलता भव बीज है, इणथी वधे ससार।
जाणी आकुलता तजे, ए उत्तम आचार ॥ १९४ ॥
सजम धर्म अगीकरे, किरिया कष्ट अपार।
तप जप बहु वरसा लगे, करी फल सब असार ॥ १९५ ॥
आकुलता परिणाम थी, खीण मे होय सहु नाश।
समकितवत एम जाणीने, आकुलता तजे खास ॥ १९६ ॥

निराकुलथिर होय के, ज्ञानवंत गुण जाण ।
हित शिख हृदय धरा तजे, आकुलता दुख खाण ॥ १९७ ॥
आकुलता कोई कारणे, करवी नहीं लगार ।
ए संसार दुःख कारणो, इणकुं दुर निवार ॥ १९८ ॥
निश्चे शुद्ध सरूपका, चिंतन वारंवार ।
निज सरूप विचारणा, करवी चित्त मझार ॥ १९९ ॥
निज सरूप को देखवो, अवलोकन पण तास ।
शुद्ध सरूप विचारवो, अंतर अनुभव भास ॥ २०० ॥
अति थिरता उपयोग की, शुद्ध सरूप के मांही ।
करतां भव दुःख सवि टले, निर्मलता लहे तांही ॥ २०१ ॥
जेम निर्मल निज चेतना, अमल अखंड अनूप ।
गुण अनंतनो पिंड एह, सहजानंद सरूप ॥ २०२ ॥
एह उपयोगे वरततां, थिर भावे लयलीन ।
निर्विकल्प रस अनुभवे ,निज गुणमां होय पीन ॥ २०३ ॥
जब लगे शुद्ध सरूप में, वरते थिर उपयोग ।
तब लगे आतम ज्ञानमां, रमण करण को जोग ॥ २०४ ॥
जब निज जोग चलित होवे, तब करे एह विचार ।
ए संसार अनित्य छे, इणमें नहीं कछु सार ॥ २०५ ॥
दुःख अनंत की खाण यह, जनम मरण भय जोर ।
विषम व्याधि पूरित सदा, भव सायर चिहुं ओर ॥ २०६ ॥
ए सरूप संसार को, जाणी त्रिभुवन नाथ ।
राज ऋद्धि सब छोडके, चलवे शिवपुर साथ ॥ २०७ ॥

निश्चे दृष्टि निहालता, चिदानंद चिद्रूप ।
चेतन द्रव्य साधरमता, पुरणानंद सरूप ॥ २०८ ॥
प्रगट सिद्धता जेहनी, आलंबन लही तास ।
शरण करु महा पुरुष को, जेम होय विकल्प नाश ॥ २०९ ॥
अथवा पंच परमेष्टि ए, परम शरण मुज एह ।
वली जिन वाणी शरण छे, परम अमृत रस मेह ॥ २१० ॥
ज्ञानादिक आतमगुणा, रत्नत्रयी अभिराम ।
एह शरण मुज अतिभलु, जेहथी लहु शिवधाम ॥ २११ ॥
एम शरण दृढ धारके, थिर करजो परिणाम ।
जब थिरता होये चित्तमां, तब निज रूप विसराम ॥ २१२ ॥
आतमरूप निहालता, करता चिंतन ताम ।
परमानंद पद पामीए, सकल कर्म होय नाश ॥ २१३ ॥
परम ज्ञान जग एह छे, परम ध्यान पण एह ।
परम ब्रह्म परगट करे, परम ज्योति गुण गेह ॥ २१४ ॥
तिण कारण निज रूपमां, फिरी फिरी करी उपयोग ।
चिहु गति भ्रमण मिटाववा, एह सम नहीं कोई जोग ॥ २१५ ॥
निज सरूप उपयोगथी, फिरी चलित जो थाय ।
तो अरिहंत परमात्मा, सिद्ध प्रभु सुखदाय ॥ २१६ ॥
तीनुका आतम सरूपका, अवलोकन करो सार ।
द्रव्य गुण पर्जव तेहना, चिंतवो चित्त मझार ॥ २१७ ॥
निर्मल गुण चिंतन करत, निर्मल होय उपयोग ।
तब फिरी निज सरूप का, ध्यान करो थिर जोग ॥ २१८ ॥

जे सरूप अरिहंत को, सिद्ध सरूप वली जेह ।
तेहवो आतम रूप छै, तिणमें नहीं संदेह ॥ २१९ ॥
चेतन द्रव्य साधरमता, तेणे करी एक सरूप ।
भेद भाव इणमें नहीं, एहवो चेतन भूप ॥ २२० ॥
धन्य जगत में ते नर, जे रमे आत्म सरूप ।
निज सरूप जेणे नवि लह्युं, ते पडिया भव कूप ॥ २२१ ॥
चेतन द्रव्य सभावथी, आतम सिद्ध समान ।
परजाये करी फेरजे, ते सवी कर्म विधान ॥ २२२ ॥
तेणे कारण अरिहंत का, द्रव्य गुण परजाय ।
ध्यान करंता तेहनुं, आतम निर्मल थाय ॥ २२३ ॥
परम गुणी परमात्मा, तेहना ध्यान पसाय ।
भेद भाव दूरे टले, एम कहे त्रिभुवन राय ॥ २२४ ॥
जेह ध्यान अरिहंत को, सोही आतम ध्यान ।
फेर कछु इणमें नहीं, एहीज परम निधान ॥ २२५ ॥
एम विचार हिरदे धरी, सम्यक् दृष्टि जेह ।
सावधा निज रूप में, मगन रहे नित्य तेह ॥ २२६ ॥
आतम हित साधक पुरुष, सम्यकवंत सुजाण ।
कहा विचार मन में करे, वरणावुं सुणो गुण खाण ॥२२७॥
जेह कुटुंब परिवार सहु, बेठे है निज पास ।
तिनको मोह छोडाववा, एणी परे बोले भास ॥ २२८ ॥
एह शरीर आश्रित छे, तुम मुज मातने तात ।
तेणे कारण तुमकुं कहुं, अब निसुणो एक वात ॥ २२९ ॥

एतो दिन शरीर एह, होत तुमारा जेह ।
अब तुमारा नाहीं है, भली परे जाणो तेह ॥ २३० ॥
अब एह शरीर का, आयुर्बल थिति जेह ।
पूरण भइ अब नवी रह, किणविध राखी तेह ॥ २३१ ॥
थिति परमाणे ते रहे, अधिक न रहे केणी भात ।
तो तम ममता छोडजी, ए ममजण की वात ॥ २३२ ॥
जो अब एह शरीर की, ममता करिये भाय ।
प्रीति राखीये तेहसु, दु ख दायक वह थाय ॥ २३ ॥
सुर असुरो का देह ए, इन्द्रादिक को जेह ।
सब ही विनाशक एह छे, तो क्यु करवो नेह ॥ २३४ ॥
इन्द्रादिक सुर महाबली, अतिशय शक्ति धरत ।
थिति पुरण थये तेह पण, खीण एक कोइ न रहत ॥२३५॥
इन्द्रादिक सुर जेह छे, तिणकी ऋद्धि अपार ।
बत्रीश लाख विमान के, सवी सुर आणाकार ॥ २३६ ॥
तीन लख छत्रीश सहस छे, महा बलवत जुजार
आतम रक्षक जेहना, अनमिप रहे हुशियार ॥ २३७ ॥
सात कटक बलनो धणी, ऋद्धि तणो नहीं पार ।
सामानिक सुरवर प्रमुख, जिहा छे बहु विस्तार ॥ २३८ ॥
एहवा पराक्रम का धणी, जब थिति पूरण होय ।
काल पिशाच जब सग्रहे, राखी न सके कोय ॥ २३९ ॥
काल कृतात के आगले, किसका चले न जोर ।
मोहे मुझ्या प्राणिया, टलवता करे सोर ॥ २४० ॥

तेणे कारण मावित्र तुम, तजो मोह कुं दूर ।
शमता भाव अंगीकरी, धर्म करो थई शूर ॥ २४१ ॥
पुद्गल रचना कारमी, विणसंता नहीं वार ।
ते ऊपर ममता किसी, धर्म करो जगसार ॥ २४२ ॥
झूठा एह संसार छे, तिणकुं जाणो सांच ।
भूल अनादि अज्ञान की, मोह करावे नाच ॥ २४३ ॥
करम संजोग आवी मले, थिति पाके सहु जाय ।
कोड़ जतन करीये कदा, पण खिन एक न रहाय ॥ २४४ ॥
स्वप्न सरीखा भोग छे, ऋद्धि चपला चमकार ।
डाभ अणी जल बिंदु सम, आयु अथिर संसार ॥ २४५ ॥
ते जाणो तमे शुभपरे, छंडो ममता जाल ।
आतमहित अंगीकरी, पाप करो विसराल ॥ २४६ ॥
राग दशा थी जीव कुं, निविड़ करम होय बंध ।
चली दुर्गति मां जई पडे, जीहां दुःखना बहु धंध ॥२४७॥
मुज उपर बहु मोह थी, तुमकुं अति दुःख थाय ।
पण आयु पुरण थये, किसीशुं ते न रखाय ॥ २४८ ॥
अलप काल आयु तुमे, देखो दृष्टि निहाल ।
संबंध नहीं तुम मुज विचे, मैं फिरता संसार ॥ २४९ ॥
भावी भाव संबंध थी, मैं भया तुमारा पुत्र ।
पंथी मेलाप तेणी परे, ए संसारह सूत्र ॥ २५० ॥
एणी विध सवि संसारी जीव, भटके चिहुं गति मांही ।
कर्म संबंधे आवी मले, पण न रहे थिर क्यांही ॥ २५१ ॥

एह सरूप ससार का, प्रत्यक्ष तुम देखाय ।
तेण कारण ममता तजि, धर्म करो चित लाय ॥ २५२ ॥
पुन्य सजोगे पामीया, नरभव अति सुखकार ।
धर्म सामग्री सवि मली, सफल करो अवतार ॥ २५३ ॥
काल आहेडी जगत म, भमतो दिवस ने रात ।
तुमकु पण ग्रहशे कदा, ए साचो अवदात ॥ २५४ ॥
एम जाणी ममार की, ममता कीजे दूर ।
समता भाव अगीकरो, जेम लहो सुख भर पूर ॥ २५५ ॥
धरम धरम जग सहु करे, पण तम न लहे मरम ।
शुद्ध धरम समज्या विना, नवि मिटे तस भरम ॥ २५६ ॥
फटिक मणि निरमल जीशो, चेतन को जे स्वभाव ।
धर्म वस्तुगत तेह छे, अवर सवे परभाव ॥ २५७ ॥
राग द्वेष की परिणति, विषय कषाय सजोग ।
मलीन भया करमे करी, जनम मरण आभोग ॥ २५८ ॥
मोह करम की गेहलता, मिथ्या दृष्टि अध ।
ममतासु माचे सदा, न लहे निजगुण सग ॥ २५९ ॥
तीन कारण तुमकु कहु, सुणो एक चित लगाय ।
ममता छाडो मूलथी, जेम तुमकु सुख थाय ॥ २६० ॥
परम पच परमेष्टि को, समरण अति सुखदाय ।
अति आदर थी कीजिये, जेहथी भव दु ख जाय ॥२६१॥
अरिहत सिद्ध परमातमा, शुद्ध सरूपी जेह ।
तेहना ध्यान प्रभाव थी, प्रगटे निज गुण रेह ॥ २६२ ॥

श्री जिन धरम पसाय थी, हुइ मुज निर्मल बुद्ध ।
आतम भली परें ओलखी, अब करुं तेहनी शुद्ध ॥ २६३ ॥
तुमे पण एह अंगी करो, श्री जिनवर को धर्म ।
निज आतम कुं भली परें, जाणि लहो सवी मर्म ॥ २६२ ॥
और सबे भ्रम जाल है, दुःखदायक सवी साज ।
तिनकी ममता त्यागके, अब साधो निज काज ॥ २६५ ॥
भव भव मेली मूकीयाः धन कुटुंब संजोग ।
वार अनंता अनुभव्या, सवि संजोग विजोग ॥ २६६ ॥
अज्ञानी ए आतमा, जिस जिम गति में जाय ।
ममतावश त्यां तेहवो, हुई रही बहु दुःख पाय ॥ २६७ ॥
महातम ए सवी मोह को, किण विध कह्यो न जाय ।
अनंतकाल एणी परे भमे, जन्म मरण दुःख दाय ॥ २६८ ॥
एम पुद्गल परजाय जेह, सर्व विनाशी जाण ।
चेतन अविनाशी सदा, ए ना लखे अजाण ॥ २६९ ॥
मिथ्या मोहने वश थई, झूठे को भी साच ।
कहे तिहां अचरज कीशो, भव मंडप को नाच ॥ २७० ॥
जीनको मोह गली गयो, भेद ज्ञान लही सार ।
पुद्गल की परिणति विषे, नवि राचे निरधार ॥ २७१ ॥
भिन्न लखे आतम थकी, पुद्गल की परजाय ।
किमही चलाव्यो नवि चले, कशी परे ते न ठगाय ॥२७२॥
भया यथारथ ज्ञान जब, जाणे निज परभाव ।
थिरता भई निज रूपमें, नवी रुचे तस परभाव ॥ २७३ ॥

मात तात तुमकु कही, ए सब साची बात।
ते चित्त मे धरज्यो सदा, सफल करो अवदात ॥ २७४ ॥
मुजकु तुम साथे हतो, एता दिन सबध ।
अब ते सवी पूरण हुओ, भावी भाव प्रबध ॥ २७५ ॥
निकल्प राइ तुमे मत करो, धर्म करो थइ धीर ।
मे पण आतम साधना, करु निज मन करी धीर ॥२७६॥
आतम कारज साधजो, तुमकु उचित है सार ।
मोह न करो किसी कारणे, जिणथी दु.ख अपार ॥२७७॥
सहज स्वरूप जे आपणो, ते छे आपणी पास ।
नही किसी सु जाचना, नहीं परकी किसी आस ॥२७८॥
आपना घर माही अछे, महा अमूल्य निधान ।
ते सभालो शुभ परें, चिंतन करो सुनिधान ॥ ॥२७९ ॥
जन्म मरण का दु ख टले, जब निरखे निजरूप ।
अनुक्रमे अविचल पद लहं, प्रगटे सिद्ध सरूप ॥ २८० ॥
निज सरूप जाण्या विना, जीव भमे ससार ।
जब निज रूप पिछाणीओ, तब लहे भव को पार ॥ २८१ ॥
सकल पदारथ जगत के, जाणण देखणहार ।
प्रत्यक्ष भिन्न शरीर सु, ज्ञायक चेतन सार ॥ २८२ ॥
दृष्टात एक सुणो इहा, बारमा स्वर्ग को देव ।
कोतुक मिश मध्यलोक मे, आवी वसियो हव ॥ २८३ ॥
कोइक रक पुरुष तणी, शरीर परजाय में सोय ।
पैसी खेल कर कीधा, ते देखो सहु कोय ॥ २८४ ॥

कबहीक रान में जाय के, काष्ट की भारी लेय ।
  नगरमें वेचन चालियो, मस्तके धरीने तेह ॥ २८५ ॥
करे मजुरी कोइ दिन, कबहीक मांगे भीख ।
  कबहीक पर सेवा विषे, दक्ष थई धरे शीख ॥ २८६ ॥
कबहीक नाटकीयो हुई, रीझवे नगर को वृंद ।
  कबहीक वणिक बनी इसो, करे वेपार अमंद ॥ २८७ ॥
कबहीक माल गुमाय के, रुदन करे बहु तेह ।
  कबहीक नफा पाय के, हास्य विनोद अछेह ॥ २८८ ॥
एणी विध खेल करे घणा, पुत्र पुत्री परिवार ।
  स्त्री आदिक साथे रहे, नगर मांही तेणी वार ॥ २८९ ॥
वैरी कटक आव्यु घणुं, नासण लाग्या लोक ।
  तब ते सुर एम चिंतवे, इहां होशे बहु शोक ॥ २९० ॥
एम विचार करी सवे, चाले आधी रात ।
  एक पुत्र कुं कांध पर, बीजाकुं ग्रहे हाथ ॥ २९१ ॥
घरवाखरको पोटलो, स्त्री लहे शिर परी तेह ।
  पुत्रीकुं आगल करी, एणी पेरे चाले तेह ॥ २९२ ॥
फाटे तूटे गोदडां, तीण की बांधी गांठ ।
  शिर धरी ते आपणे, एणीविध तीहांथी नाठ ॥ २९३ ॥
मारग चालतां तेहने, वाट वटाऊ मले जेह ।
  पूछे कीहां चाल्या तुमे, तब एम भांखे तेह ॥ २९४ ॥
नगर अमारुं घेरीयुं, वयरी लश्कर आय ।
  तीण कारण अमे नाशीया, लही कुटुंब समवाय ॥ २९५ ॥

कोइक गाम में जायके, जिम तिम करु गुजरान।
करम विपाक वने इमा, तेणे करी भया हेरान ॥ २९६ ॥
एम अनेक प्रकार का, खेल करे जगमाही।
पण चित्त म जाणे इश्यु, मे सदा सुख माही ॥ २९७ ॥
मैंतो धारमा कल्प को, देव महा ऋद्धिवत।
अनोपम सुख विलसु सदा, अदभुत ए विरतत ॥ २९८ ॥
॥ चेष्टा जे मे करी, ते सवि कौतुक काज।
रक परजाय धारण करी, तीणको ए सवी साज ॥ २९९ ॥
जेम सुर गृह चरित्रनो, नवी धरे ममता भाव।
दीन भाव पण नवी करे, चितवे निज सुरभाव ॥ ३०० ॥
एणीविध पर परजाय मे, मे जे चेष्टा करत।
पण निज शुद्ध सरूप कु, कबहु नहीं विसरत ॥ ३०१ ॥
शुद्ध हमारो रूप है, शोभित सिद्ध समान।
केवल लक्ष्मी को धणी, गुण अनत निधान ॥ ३०२ ॥
एणी पर गृह सरूप को, अनुभव किधो बहुवार।
अब किणविध सुन भय नहीं, ए जाणो निरधार ॥ ३०३ ॥
अब आगे निज नारी कु, समजावे शुभ रीत।
ममता न करो गृह की, न करो पुद्गल प्रीत ॥ ३०४ ॥
थिति पुरण भइ गृह की, अब रणे की नाही।
तो क्यु मोह धरो घणो, दुःख करना दिल माही ॥ ३०५ ॥
मेरा तेरा सबध जे, इता दिन का होय।
बध पट को न करी शक, एणीविध जाणो सोय ॥ ३०६ ॥

एह शरीर असार छे, विणसंता नही वार ।
थिति बल सवि पूरण हुआ, खीणमें होयगी छार ॥ ३०७ ॥
तीण कारण तुमकुं कहुं, म धरो इणकी आश ।
गरज सरे नही ताहरी इनका होये अब नाश ॥ ३०८ ॥
एम जाणी ममता तजी, धरम करो धरी प्रीत ।
जेम आतम सुख संपजे, ए उत्तम की रीत ॥ ३०९ ॥
काल जगत में सहु शीरे, गाफल रहेणा नांही ।
कबहीक तुजकुं पण ग्रहे, संशय इणमें नांही ॥ ३१० ॥
तुं मुज प्यारी नारी छे, ए सवी मोह विलास ।
भोग विटंबना जाणीये, आतम गुण को नाश ॥ ३११ ॥
स्त्री भरतार संजोग जे, भव नाटक एह जाण ।
चेतन तुज मुज सारीखो, कर्म विचित्र वखाण ॥ ३१२ ॥
एम विचार चित्त में धरी, ममता मूको दूर ।
निज स्वारथ साधन भणी, धर्म करो थइ शूर ॥ ३१३ ॥
जो मुज ऊपर राग छे, तो करो धरम में सहाज ।
इणे अवसर तुज उचित है, ए समो अवर न काज ॥ ३१४ ॥
धरम उपदेश एणी परे, तेरा हित के काज ।
मैं कह्यो करुणा लायके, तेणे साधो शिवराज ॥ ३१५ ॥
फोगट खेद न कीजिये, कर्म बंध बहु थाय ।
जाणी एम ममता तजी, धर्म करो सुखदाय ॥ ३१६ ।
हवे निज कुटुंब भणी कहे, हितशिक्षा सुविचार ।
ममता मोह छोडाववा, एणीविध करे उपगार ॥ ३१७ ।

सुणो कुटुंब परिवार सहु, कहु तुमकु हित लाय ।
आउ थिति पूरण भई, एह शरीर की भाय ॥ ३१८ ॥
तेणे कारण मुज उपरे, राग न करना कोय ।
राग कर्या दु ख उपजे, गरज न सरशे जोय ॥ ३१९ ॥
एह तिथि समार की, पखीका मेलाप ।
खीण खीण मे उडी चले, क्या करना सताप ॥ ३२० ॥
कोण रह्या इहा थीर थइ, रेहणहार नहीं कोय ।
प्रत्यक्ष दीसे इणीपर, तुमे पण जाणो सोय ॥ ३२१ ॥
मेरे तुम सहु साथ सु, क्षमा भाव छे सार ।
आणदमा तुम सहु रहो, धर्म उपर धरो प्यार ॥ ३२२ ॥
भव सायर मा बूडता, ना कोइ राखणहार ।
धर्म एक प्रवहण समो, केवली भाखित सार । ३२३ ॥
ए सेवो तुम चित धरी, जेम पामो सुख सार ।
दुरगति सवि दूरे टले, अनुक्रमे भव निस्तार ॥ ३२४ ॥
एम कुटुंब परिवार कु, समजावी अवदात ।
पछी पुत्र बोलाय के, भाखे एणी परे बात ॥ ३२५ ॥
सुणो पुत्र शाणा तुमे, केहणे को ए सार ।
मोह न करवो माहरो, एह अथिर समार ॥ ३२६ ॥
श्री जिन धर्म अगी करो, सेवो धरी बहुराग ।
तुमकु सुखदायक घणो, लहेशो महा सोभाग ॥ ३२७ ॥
व्यावहारिक सबध थी, आणा मानो सार ।
तेणे कारण तुमने कहु, धारो चित मझार ॥ ३२८ ॥

प्रथम देव गुरु धर्म की, करो अति गाढ प्रतीत ।
मित्राई करो सुजन की, धर्मीसुं धरो प्रीत ॥ ३२९ ॥
दान शियल तप भावना, धर्म ए चार प्रकार ।
राग धरो नित्य एहसुं, करो शक्ति अनुसार ॥ ३३० ॥
सजन तथा परजन विषे, भेदविज्ञान जेम होय ।
एह उपाय करो सदा, शिव सुखदायक सोय ॥ ३३१ ॥
जे संसारी प्राणिआ, मगन रहे संसार ।
प्रीत न कीजिये तेह की, ममता दुरनिवार ॥ ३३२ ॥
रागी जीव की संगते, एह संसार मझार ।
काल अनादि भटकतां, कीम ही न लहीये पार ॥ ३३३ ॥
रागे राग दशा वधे, तेम वली विषय विकार ।
ममता मूर्छा ब वधे, ए दुर्गति दातार ॥ ३३४ ॥
तेणे संसारी जीव की, तजी संगत दिलधार ।
ज्ञानवंत पुरुषां तणी, करो संगति सुविचार ॥ ३३५ ॥
धर्मात्मा पुरुष तणी, संगते बहु गुण थाय ।
जश कीर्ति वाधे घणी, परिणति सुधरे भाय ॥ ३३६ ॥
एम अनेक गुण संपजे, एह लोक में सुखकार ।
वली परलोक में पामीये, स्वर्गादिक सुखसार ॥ ३३७ ॥
वली उत्तम पुरुषतणी, संगते लहीये धर्म ।
धर्म आराधी अनुक्रमे, पामीये शिवपुर सर्म ॥ ३३८ ॥
धरमी उत्तम पुरुष की, संगति सुखनी खाण ।
दोष सकल दूरे टले, अनुक्रमें पद निर्वाण ॥ ३३९ ॥

एणी विध तुमकू हितभणी, वचन कथा सुरसाल।
जो तुमकू मच्चा लगे, तो कीजो चित्त विशाल ॥ ३४० ॥
दया भाव चित्त आणके, मैं कहा धर्म विचार।
जो तुम हृदय मा धारशो, तो लेशो सुख अपार ॥ ३४१ ॥
एम सरवु समजाय के, सब से अलगा होय।
अजमर दरसी आपणा, चित्त मे चिंते सोय ॥ ३४२ ॥
आयु अल्प निज जाण के, समकित दृष्टिवंत।
दान पुन्य करणा जीके, निज हाथे करे संत ॥ ३४३ ॥
महाव्रत धरी मुनिवरा, सम्यग ज्ञान सयुक्त।
धारक दशविध धर्मना, पंच समिति त्रण गुप्त ॥ ३४४ ॥
बाह्य अभ्यंतर ग्रंथि जे, तेहथी न्यारा जेह।
बहुश्रुत आगम अथना, मर्म लहे सहु तेह ॥ ३४५ ॥
एहवा उत्तम गुरु तणो, पुन्य थी जोग जो होय।
अन्तर खुली एकान्त मे, निशल्य भाव होय सोय ॥ ३४६ ॥
एहवा उत्तम पुरुषनो, जोग कदी नवी होय।
तो समकित दृष्टि पुरुष, महा गंभीर ते जोय ॥ ३४७ ॥
एहवा उत्तम पुरुष के, आगे अपनी बात।
हृदय खोल कर कीजिये, मरम सकल अवदात ॥ ३४८ ॥
जोग जीव उत्तम जीके, भव भीरु महाभाग्य।
एहजो जोग न होय कदा, कहेणे को नहीं लाग ॥ ३४९ ॥
अपना मन मे चितवे, दुष्ट करम वश जेह।
पाप करम जे होय गया, बहु विध निंदे तेह ॥ ३५० ॥

श्री अरिहंत परमातमा, वली श्री सिद्ध भगवंत ।
ज्ञानवंत मुनिराजनी, वली सुर समकित वंत ॥ ३५१ ॥
इत्यादिक महा पुरुष की, साख करी सुविशाल ।
वली निज आतम साखसुं, दुरित सवे अगराल ॥ ३५२ ॥
मिथ्या दुष्कृत भली परे, दीजे त्रिकरण शुद्ध ।
एणी विध पवित्र थई पछे, कीजे निर्मल बुद्ध ॥ ३५३ ॥
अवश्य मरण निज मन विषे, भास न हुवे जाम ।
सर्व परिग्रह त्याग के, आहार चार तजे ताम ॥ ३५४ ॥
जो कदि निर्णय नवी हुवे, मरण तणो मन मांही ।
तो मरजादा कीजिये, इतर काल की तांही ॥ ३५५ ॥
सर्व आरंभ परिग्रह सहु, तिनको कीजे त्याग ।
चारे आहार वली पचखिये, इणविध करी महाभाग॥ ३५६ ॥
हवे ते समकित दृष्टिवंत, थिर करी मन वच काय ।
खाट थी नीचे उतरी, सावधान अति थाय ॥ ३५७ ॥
सिंह परे निर्भय थइ, करे निज आतम काज ।
मोक्ष लक्ष्मी वरवा भणी, लेवा शिवपुर राज ॥ ३५८ ॥
जिम महा सुभट संग्राम मां, वैरी जीतण काज ।
रण भूमिमें संचरे, करता अतीह दीग्गाज ॥ ३५९ ॥
इणीविध समकितवंत जे, करी थिरता परिणाम ।
आकुलता अंशे नहीं, धीरज तणुं ते धाम ॥ ३६० ॥
शुद्ध उपयोग मां वरततो, आतमगुण अनुराग ।
परमातम के ध्यान में, लीन और सब त्याग ॥ ३६१ ॥

ध्याता ध्येयनी एकता, ध्यान करता होय।
आतम होय परमातमा, एम जाणे ते मोय ॥ ३६२ ॥
सम्यग्दृष्टि शुभमति, शिवसुख चाह तेह।
रागादि परीणाममाँ, खिण नवी वर्ते तेह ॥ ३६३ ॥
किणही पदार्थ की नहीं, वछा तस चितमाह।
मोक्ष लक्ष्मी वरवा भणी, वरतो अति उछाह ॥ ३६४ ॥
एणीविध भाव विचारता, काल पुरण करे मोय।
आकुलता किणविध नहीं निराकुल थिर होय ॥ ३६५ ॥
आतमसुख आणदमय, शांत सुधारस कुंड।
तामे ते जीली रहे, आतम वीरज उदड ॥ ३६६ ॥
आतम सुख स्वाधीन छे, और न एह समान।
एम जाणी निजरूप म, वरते वरी बहुमान ॥ ३६७ ॥
एम आणदमा वरतता, शांत परिणाम सयुक्त।
आयु निज पुरण करी, मरण लहे मतिव्रत ॥ ३६८ ॥
एह समाधि प्रभावथी, इन्द्रादिक की रुद्ध।
उत्तम पदवी ते लहे, सर्व काज को सिद्ध ॥ ३६९ ॥
महा विभूति पायके विचरता भगवान्।
वली केवली मुनिराजने, वद स्तव बहु मान ॥ ३७० ॥
सुरलोके शाश्वत प्रभु, नित्य भक्ति करे ताम।
कल्याणक जिनराजना, ओच्छव करत उलाम ॥ ३७१ ॥
नदीगर आदे घणा, तीरथ वद सार।
समकित निर्मल ते करे, सफल करे अवतार ॥ ३७२ ॥

सुर आयु पुरण करी, तिहां थी चवीने तेह ।
मनुष्य गति उत्तम कुले, जनम लहे भवी तेह ॥ ३७३ ॥
राज्य ऋद्धि सुख भोगवी, सद्गुरु पासे तेह ।
संजम धर्म अंगीकरी, गुरु सेवे धरी नेह ॥ ३७४ ॥
शुद्ध चरण परिणाम थी, अति विशुद्धता थाय ।
क्षपक श्रेणी आरोहीने, घाती करम खपाय ॥ ३७५ ॥
केवल ज्ञान प्रगट भयो, केवल दरशन भास ।
एक समय त्रण कालकी, सब वस्तु प्रकाश ॥ ३७६ ॥
सादि अनंत तिथि करी, अविचल सुख निरधार ।
वचन अगोचर एह छे, किणविध लहीये पार ॥ ३७७ ॥
महिमा मरण समाधिनो, जाणो अति गुणगेह ।
तिण कारण भवी प्राणिया, उद्यम करीये तेह ॥ ३७८ ॥
एणविध मरण समाधि को, संक्षेपे सुविचार ।
दुहा भास रचना करी, निज परने उपगार ॥ ३७९ ॥
मरण समाधि विचारनी, प्रति भली मुज एक ।
तिण में समाधि मरण को, वर्णव कियो अति छेक ॥ ३८० ॥
पण भाषा मरुदेश की, तिणमें लखीयो तेह ।
तिण कारण सुगम करी, दुहा बंध कियो एह ॥ ३८१ ॥
अल्पमति अनुसारथी, विन उपयोगे जेह ।
विरुद्ध भव लखियो जिके, मिथ्या दुष्कृत तेह ॥ ३८२ ॥

॥ इति समाधि विचार ॥

श्रावक के बारह व्रतों का संक्षिप्त वर्णन.

सम्यक्त्व.

सबसे पहले श्रीजिनेश्वर देव के फरमाये हुए तत्त्वों मे अटूट श्रद्धा रखने रूप सम्यक्त्व को धारण करना चाहिये। जिसको श्रीवीतराग स्वरूपवाले देव की, निष्पाप जीवनवाले, निष्पाप मार्ग को बतानेवाले सद्गुरु की, और नय प्रमाण से प्रमाणित श्रीवीतराग भगवान के फरमाये हुए, दुर्गति से बचाने वाले, सुगति को देनेवाले, अहिंसा मूल धर्म की तन से. मन से वचन से यथाशक्ति आराधना करके व्यक्त करना चाहिये। सम्यक्त्व की शुद्ध भूमिका में ही श्रावक धर्म रूप सफल कल्प वृक्ष पैदा होता है। विना संख्या के बिंदु निष्फल होते हैं, वैसे ही सम्यक्त्व हीन आचरण भी कामयाब नहीं होते। आत्म दर्शन में पहिला, और संख्या मे चौथा गुणस्थानक सम्यक्त्व है।

बारह व्रतों के नाम

सम्यक्त्व को धारण किये बाद ५ अणुव्रत, ३ गुणव्रत, ४ शिक्षाव्रत लेने चाहिये, जिनके नाम इस प्रकार हैं। १—स्थूल प्राणातिपात विरमण। २—स्थूल मृषावादविरमण। ३—स्थूल अदत्तादान विरमण। ४—स्वदार-(पुरुष) संतोष। ५—परिग्रहपरिमाण। ये पाच अणुव्रत हैं। ६ दिक्परिमाण। ७—भोगोपभोगपरिमाण। ८—अनर्थ-

दंड, ये तीन व्रत पालनमें गुणकारी होने से गुणव्रत कहे जाते हैं। ९–सामायिक । १०–देशावकाशिक । ११–पौपधोपवास । १२–अतिथिसंविभाग । ये चार व्रत पालन की शिक्षा देनेवाले शिक्षाव्रत कहे जाते हैं।

पहला अणुव्रत.

१–स्थूल प्राणातिपात विरमण—मोटी हिंसा से निवृत्त होना। चलते फिरते त्रस जीवों को बिना कारण और बिना अपराध मारने का त्याग पहला अणुव्रत है। इसमें श्रावक सूक्ष्म जीवों की हिंसा में, आरंभ जन्य हिंसा में, अपराधी की हिंसा में और सापेक्ष हिंसा में विवेक शील होता है। अतः वह सवा विसवा दया का अधिकारी माना जाता है।

दूसरा अणुव्रत.

२–स्थूल मृषावाद विरमण—मोटा झूठ न बोलना। कन्या के कुल, शील विपय में, उपजाऊ अनुपजाऊ भूमि के संबंध में, गाय आदि पशुओं के संबंध में, न्यास धरोहर के संबंध में और किसी की साख भरने में, जिसमें राजा दंड करे, लोक निंदा करे, ऐसा झूठ बोलने का त्याग, और स्वदार मंत्रभेद, रहस्य-भेद, गुप्तमर्म प्रकाश, आदि न करना दूसरा अणुव्रत है। यहां हंसी मजाक मनोविनोद आदि करते समय के मृषावाद में श्रावक विवेक शील होता है।

तीसरा अणुव्रत

३—स्थूल अदत्तादान विरमण—विना दिये हुए मोटी चीजों का न लेना। दूसरे की मालिकी की ऐसी चीजों को कि जिनके लेने से राजा दंड दे, लोकों में निंदा हो, उनको विना मालीक के दिये, न लेने का त्याग तीसरा अणुव्रत है। यहा हसी मजाक में रुमाल लकडी आदि पराई चीजों के अदत्तादान मे श्रावक विवेक शील होता है।

चौथा अणुव्रत

४—स्वदार (पति) संतोष—अपनी धर्मपत्नी के साथ भोग भोगने में संतोष रखना। परस्त्री, वेश्या आदि का सर्वथा त्याग करना और अपनी स्त्री के साथ संतुष्ट रहना श्रावक के लिये चौथा अणुव्रत है। ठीक वैसे ही अपने पति के साथ संतुष्ट रहना परपुरुषों का सर्वथा त्याग करना श्राविकाओं के लिये चौथा अणुव्रत है।

पाचवा अणुव्रत

५—परिग्रह परिमाण व्रत—मूर्च्छा बढानेवाले साधनों को परिग्रह कहते हैं। धन, धान्य, क्षेत्र, मकान आदि वास्तु, चांदी, सोना, बरतन आदि कुप्य, दास दासी आदि द्विपद, गाय घोड़ा आदि चतुष्पद ये नव प्रकार परिग्रह के होते हैं। उपर के नव

पदार्थों में मूर्च्छा को घटाना–परिग्रह का परिमाण करना पांचवां अणुव्रत है ।

पहला गुण व्रत.

६–दिक्परिमाण व्रत—चार दिशा, चार विदिशा, और ऊर्ध्व दिशा और अधोदिशा, इन दशों दिशाओं में जाने आने का परिमाण करना पहेला गुण-व्रत है। तीर्थ-यात्रा के निमित्त जाने आने में परिमाण नहीं होता ।

दूसरा गुणव्रत.

७–भोगोपभोग परिमाण व्रत—एक वार भोग में आने-वाली चीजें दाल-रोटी आदि भोग, वारंवार भोग में आनेवाली चीजें वस्त्र, वरतन, मकान आदि उपभोग। इन भोग और उपभोग के साधनों का परिमाण करना दूसरा गुणव्रत है ।

तीसरा गुणव्रत.

८–अनर्थदंड विरमण—किसी अर्थ को सिद्ध न करनेवाली क्रिया को अनर्थ कहते हैं। जैसे किसी प्राणी को अकारण ही ताडना तर्जना करना। इस अनर्थ क्रिया का त्याग करना तीसरा गुणव्रत है ।

पहला शिक्षाव्रत

९-सामायिक व्रत—जगत के सब जीवों में समान भाव को धारण करने से पैदा होनेवाले ज्ञान, दर्शन और चारित्र का जो आय लाभ होता है। उसे सामायिक कहते हैं। इसको ४८ मिनीट तक विधि पूर्वक धारण किया जाता है। दस मन के, दस वचन के और बारह काया के, इन ३२ दोषों के त्याग पूर्वक ४८ मिनीट तक विधि सहित धारा हुआ समभाव सामायिक पहला शिक्षाव्रत है।

दूसरा शिक्षाव्रत

१०-देशावकाशिक व्रत—छठे व्रतमे जो दिशाओं मे लम्बा चौडा परिमाण किया जाता है। उसको एकदम सक्षेप करके कमसे कम तीन सामायिक काल तक विधिपूर्वक रहना दूसरा शिक्षाव्रत है।

तीसरा शिक्षाव्रत

११-पौषधोपवास व्रत—पर्व तिथियों मे धर्म की पुष्टि को करने वाली, उपवास पूर्वक की हुई, क्रिया पौषध कहाती है। इसमें आहार का त्याग, शरीर सत्कार का त्याग, ब्रह्मचर्य धारण और अव्यापार वृत्ति ये चार बातें धारण की जाती हैं। इस ८ प्रहर या ८ प्रहर परिमितकाल स्वाध्याय करना तीसरा शिक्षा-व्रत है।

चौथा शिक्षाव्रत.

१२–अतिथि संविभाग--अतिथि, साधु को कहते हैं। पंच महाव्रतधारी शुद्ध साधुओं को शुद्धवित्त और चित्त से संपादित कल्पनीय आहार-पानी वस्त्र आदि दे कर सत्कार करना चौथा शिक्षाव्रत है।

संलेखना.

वारह व्रतों को भली प्रकार पालन करते हुए श्रावक को क्रमशः दीक्षित हो जाना चाहिये। दीक्षा के योग्य, शक्ति के अभाव में संलेखना–संथारा करना चाहिये। संलेखना का कोई नियत समय नहीं होता। आयुष्य के निकट आ जाने पर यह की जाती है इसको–अपश्चिममारणान्तिकी संलेखना भी कहते हैं।

ग्रहणविधि.

शरीर के और कपायों के अधिक दुर्वल होने पर, श्रावक पौषधशाला में, उपवन में या अपने घर में भी एकान्त में विधिपूर्वक डाभ आदि का संथारा बिछावे, उस पर पूर्व या उत्तर दिशा की ओर मुंह करके अरिहंतों को, सिद्धों को, और धर्माचार्य को वंदन करे। देववंदन-गुरुवंदन विधिपूर्वक करे और चारों आहार का त्याग करे। अठारह पाप स्थानों की आलोचना करे।

गुरु मुख से प्रत्याख्यान करे। देव गुरु स्मरण मे, आत्म चिंतन म मनको लगाकर समाधि पूर्वक समय नितारें। आराधना सुने। जीवन पर्यंत का भवचरिम पच्चक्खाण करे।

भवचरिम पच्चक्खाण

भव चरिम पच्चक्खाइ [तिविह] चउव्विहं पि आहार असण पाण खाइम साइम अण्णत्थणाभोगेण सहस्सागारेण महत्तरागारेण सव्वसमाहिवत्तियागारेण वोसिरइ।

भवचरिम पच्चक्खाण म यदि चाहें तो पानी खुला रख सक्ते हैं। नमो अरिहताण–आदि पदको रटना चाहिये। अरिहतों का शरणा, सिद्धो का शरणा, साधुओं का शरणा, केवली प्रणीत धर्म का शरणा लेना, लिवाना चाहिये। इस प्रकार श्रावक धर्म का पालन करते हुए श्रावक श्राविका सद्गति के अधिकारी होत हैं। ॐ शान्ति.।

प्रशस्ति

रसनन्दनिधीन्द्वब्दे जिनहर्षाब्धिसूरिणा ।
द्वादशव्रतसक्षेपा र्थोऽलेखि विक्रमे पुरे ॥

॥ इति संक्षिप्त बारहव्रत ॥

अर्हं

कविचक्रचक्रवर्त्तिः—श्रीमत्समयसुन्दरोपाध्याय
विरचित संस्कृत भाषानिबद्ध—

श्रावक आराधना का अनुवाद ।

(अनुवादकः—श्रीमज्जिनहरिसागरसूरीश्वरजी महाराज)

[मङ्गल प्रयोजनादि]

श्रीसर्वज्ञं जिनं नत्वा, दुष्टकष्टप्रणाशनम् ।
श्रावकाराधनां वक्ष्ये, सुगमां शिष्यहेतवे ॥ १ ॥

ऐश्वर्यादि लक्ष्मी से विराजित, जगत के सब भावों को जाननेवाले, कर्मजनित दुष्ट कष्टों को मिटानेवाले रागद्वेष को जीतनेवाले श्रीजिनेश्वर भगवान् को वंदन करके उपासक शिष्यों के लिये सरल अर्थवाली-सुगम ऐसी श्रावक धर्म संबंधिनी आराधना को कहता हूं ।

इस आराधना में पांच अधिकार होते हैं—१—सम्यक्त्व की शुद्धि, २—अठारह पाप स्थानों का परिहार, ३—चोरासी लाख जीवयोनियों से क्षमायाचना, ४—किये हुए पापों की निन्दा-गर्हा आलोचना, और ५—किये हुए पुण्य कार्यों की अनुमोदना। आयुष्य के निकट आजाने पर अन्त समय में भव्यात्माओं को इन उपर लिखी पांच बातों की आराधना करनी चाहिये ।

आराधना विधि

शुद्धता के साथ पहले 'इरियावहिया तस्स उत्तरी अन्नत्थ' कहकर एक 'लोगस्स' का काउस्सग्ग करे, प्रकट लोगस्स कहे बाद में मुहपत्ती की पडिलेहना करके दो वांदना दे। फिर—"इच्छाकारेण संदिस्सह भगवन् ! सम्मत्त सामाइय सुयसामाइय आरोवणत्थं चेइयाइं वंदावेह" इस प्रकार कह कर प्रभु प्रतिमा के सन्मुख हो खमासमण देकर आराधक कहे—'भगवन्' 'आराहण सुणावेह'—तब गुरु फरमावे 'विहिपुव्व सुणेह'।

सम्यक्त्व शुद्धि

अरिहंतो महदेवो, जावज्जीवं सुसाहुणो गुरुणो।
जिणपण्णत्तं तत्तं, इय सम्मत्तं मए गहियं॥

चौंतीस महा अतिशयोंवाले, चौसठ इन्द्रों से पूजित, आठ महा प्रातिहार्यों से सुशोभित, अठारह दोषों से दूर रहनेवाले अनन्त ज्ञानादि गुणों से व्याप्त परमपदी सिद्धावस्था को पाने वाले, रागद्वेष रहित सर्वाधिदेव श्रीअरिहंत भगवान् ही मेरे 'देव' हैं।

हिंसा असत्य चोरी विषयसेवा और परिग्रह की मूर्छा का सर्वथा त्याग करने रूप पांच महा व्रतों को पालने वाले, आहार के बयालीस दूषणों को टालनेवाले, ईर्यासमिति आदि पांच समिति क्रियाओं में विचरनेवाले मन-वचन काया को

को स्वीकार किया हो इस भव में, अनन्त भवों में, जानते, अजानते, मन-वचन-काया इन तीन योगों से जीव विराधना हुई हो तो 'मिच्छा मि दुक्कडं देहि' ।

चार कषाय.

क्रोध मान माया लोभ, प्रत्येक अनंतानुबंधी अप्रत्याख्यान प्रत्याख्यान-संज्वलन की चौकडियों का सेवन, कषायों का सेवन किया हो, इस भव में, अनन्त भवों में तो 'मिच्छा मि दुक्कडं देहि'।

दो वन्धन.

पहला वन्धन राग तीन प्रकार का है—१–स्त्री पुरुष के सम्बन्ध में विषय लोलुपता रखना–कामराग, २–धन-धान्य स्वजन-पुत्र-माता-पिता प्रमुख पारिवारिक सम्बन्धियों में प्रेम रखना–स्नेहराग, और ३–विना समझे विना गुरु के वताये अपने मन माने मत पे डटे रहना—अभिनिवेष रखना—दृष्टिराग कहलाता है।

दूसरा वन्धन द्वेष भी तीन प्रकार का है—१–मन के अनुकूल काम न करनेवाले स्त्री-पुरुष-पशुओं से द्वेष करना सचित्तद्वेष, २–घट-पट-कपाट-पत्थर-घर आदि अचेतन पदार्थों में अनुकूलता के अभाव में द्वेष करना–अचित्तद्वेष, ३–अचेतन अलंकार-सतार-नगारे आदि और सचेतन उसके पहनने वजाने वाले आदि की प्रतिकूल प्रवृत्तियों में द्वेष करना–सचित्ताचित्त-द्वेष कहलाता है।

इन रागद्वेष रूप बन्धनों को इस भव में या पर भव में सेवन किया हो तो 'मिच्छा मि दुक्कड देहि'।

बाकी के सात पाप

१२–किसी स्वार्थवश लोगों से लड़ाई करना कलह। १३–कर्कश वचनादि से कषाय वश किसी को कलंक देना अभ्याख्यान। १४–लोगों के सच्चे झूठे दूषणों को ऐरों को प्रकाशित करना–परपरिवाद। १५–दु ख प्राप्ति में–इष्टवियोग में आकुल व्याकुल होना–अरति और विषय सुख की प्राप्ति में इष्ट सयोग में हर्षातिरेक का अनुभव करना–रति। १६–राजा पंच आदि के सामने किसी की मर्म-गुप्त बात प्रकाशित करके दण्ड आदि दिलवाना–चुगलखोरी पशुन्य,। १७–किसी की रखी हुई धरोहर को हजम कर जाने की इच्छा से कपट पूर्वक झूठ बोलना माया मृषावाद। १८–मावडिय चामुण्डा चौसठ योगिनी यक्ष-घोघा क्षेत्रपाल विनायक हरि हर आदि रागद्वेष से कलुषित प्रवृत्तिवालों को देवतत्त्व की बुद्धि से मानना, योगी–सन्यासी कापालिक कापडी तापस-शिख–मुल्ला–चरित्र भ्रष्ट जैन वेशधारी पासत्थे–ओसन्ने निह्नवादि कुगुरुओं को गुरुतत्त्व की बुद्धि से मानना, मिथ्यात्वियों के प्ररूपित हिंसा आदि दोषों से दुष्ट धर्म को धर्मतत्त्व की बुद्धि से मानना, इस प्रकार कुदेव–कुगुरु कुधर्म को मानना मिथ्यात्व होता है, वह आत्मा में शल्य रूप होने से मिथ्यात्व शल्य। इन कलहादि सात पापों का इस भव में

अनन्नत भवों में आचरण किया हो 'मिच्छा मि दुक्कडं देहि'।

इस प्रकार पांच आश्रव चार कषाय दो बंधन कलहादि सात, कुल अठारह पापों का अरिहंतादि की साक्षी से गुरु महाराज के सामने आराधना करनेवाला-मिच्छा मि दुक्कडं दे।



चौरासी लाख जीवयोनि क्षामणा.

पांच स्थावर.

पहले पृथ्वीकाय के—स्फटिक-मणि-रत्न-मुंगे-हिंगलु हडताल-मनसिल पत्थर-सुरमा-सोना-चांदी-गेरु-खडी-आरसपान-पत्थर के टुकडे-भोडल-वस्त्र रंगने की लाल मिट्टी काली मिट्टी-उपर मिट्टी-पाषाण-खर पृथ्वी आदि अनेक भेद हैं। पृथ्वीकायिक जीवों का उत्कृष्टतः २२ हजार वर्ष का आयुष्य और अङ्गुल के असंख्यातवें हिस्से जितना मोटा शरीर होता है। एक आंवले जितने पृथ्वी खण्ड में जो जीव होते हैं, उनके शरीर यदि कबूतर के जितने मोटे हो जायँ तो, जम्बू द्वीप जितने बडे क्षेत्र में भी रह नहीं सकते। पृथ्वीकायिक जीवों की ७ लाख योनियां-उत्पत्ति स्थान हैं। इन जीवों की आरम्भादि करते हुए विराधना-हिंसा की हो इस भव में, अनंत भवों में तो 'मिच्छा मि दुक्कडं देहि'।

दूसरे जलकाय के–आकाश का–वर्षा से गिरा हुआ पानी, भूमि खोदने से निकला पानी, ओस, हिम, ओले, धूअर घनोदधि प्रमुख अनेक भेद है। अप्कायिक जीवों का उत्कृष्टायु ७ हजार वर्ष का है और शरीर प्रमाण अगुल का असख्यातवा भाग। एक जल बिंदु मे असख्याते जीव होते हैं। उनके सात लाख उत्पत्ति स्थान है। इन जीवों की आरम्भादि से हिंसा की हो इस भव मे अनन्त भवों में तो 'मिच्छा मि दुकड देहि'।

तीसरे अग्निकाय के–अग्नि, अगारे, झुम्रुरे, अग्निकण, ज्वालाए, बीजली, आदि अनेक भेद होते है। उनके तीन अहोरात्र का उत्कृष्ट आयुष्य होता है। शरीर प्रमाण अगुल के असख्यातवें हिस्से के जितना होता है। चिणोठी गुजा जितनी आग मे असख्याते जीव होते हैं। उनके सात लाख उत्पत्ति स्थान हैं। इन जीवों की जलाने बुझाने आदि के आरम्भ से इस भव मे अनन्त भवों मे हिंसा की हो तो 'मिच्छा मि दुक्कड देहि'।

चौथे वायुकाय के–गुजता वायु–शुद्धवायु–महावायु–चक्र वायु–आंधी–घनवात–तनुवात आदि अनेक भेद हैं। इनका उत्कृष्ट आयु ३ हजार वर्ष का होता है। अगुल के असख्यातवें भाग जितना शरीर प्रमाण होता है। अगुल प्रमाण आकाश में रहनेवाले वायुकाय के पिण्डमे असख्याते जीव होते हैं। वायुकायिक जीवों की ७ लाख योनियां हैं। इन जीवों की आरम्भादि से विराधना की हो इस भव में अनन्त भवों मे तो 'मिच्छा मि दुकड देहि'।

पांचवें वनस्पतिकाय के मुख्य प्रत्येक और साधारण ऐसे दो भेद हैं। प्रत्येक वनस्पति के आम–नीम–कदम्ब–अशोक–नाग पुन्नाग–धावडी–खदिर–वड–पीपल–करं–बोर–खेजड–जाली आक–धतूर–रायण–केली–तृण-हरि-वेल–लता–पत्र–पुष्प–बीज छाल प्रमुख अनेक भेद हैं। उसका शरीर प्रमाण कुछ अधिक एक हजार योजन तक–पद्महृदादि में पैदा होनेवाले कमल आदि का होता है। उत्कृष्ट आयुष्य दशहजार वर्ष का होता है। इनकी हिंसा इस भव में अनंत भवों में की हो तो 'मिच्छा मि दुक्कडं देहि'। साधारण वनस्पतिकाय के कंद–मूल–अंकुर–नई कोंपलें काई–सेवाल–भुंइफोड–जो छत्राकार होते हैं–पांच वर्ण की फूलन–गाजर–मूला–सूरण–लहसून–प्याज–अद्रक–थुअर–कँवार पाठा–गुग्गुलि–गिलोय–मोथ–हरि हलदी–रतालु–पिंडालु प्रमुख अनेक भेद होते हैं। जघन्य उत्कृष्ट अन्तर्मुहुर्त प्रमाण आयुष्य होता है। अंगुल के असंख्यातवे भाग प्रमाण देह प्रमाण होता है। एक शरीर में अनंते जीव होते हैं। इन जीवों के चौदह लाख उत्पत्ति स्थान होते हैं। इन जीवों की छेदन भेदन आदि आरंभ करते हुए हिंसा की हो, इस भव में अनंत भवों में तो 'मिच्छा मि दुक्कडं देहि'।

त्रसकाय.

दो इन्द्रियवाले जीवों के शंख-सीप-कौडियें-कातरे-जल के कीडे–वारिस के अलसिये–कृमि–गंडोले–चुडेली–मेहरि–काठ के

कीडे-तबोलिया नाग पैर आदि मे होनेवाले वाले इत्यादि अनेक भेद होते है। उनका उत्कृष्ट आयुष्य बारह वर्ष का होता है। अलसिये आदि दोइन्द्रिय जीवों का उत्कृष्ट देह मान बारह योजन का होता है। इनकी दो लाख योनिया होती है' आरभ आदि करते हुए इस भव मे अनत भवों मे हिंसा हुई हो तो 'मि च्छामि दुक्ड देहि'।

तीन इन्द्रीयोंवाले जीवों के चींटी-मकोडे-गदहिया-जू लिख-खटमल-कुथुए-दीमक-घुण-ईलिया-धान के कीडे-जवे गोगीडे-धीमेल-इन्द्रगोप प्रमुख अनेक भेद होते हैं। उत्कृष्ट आयुष्य ४९ दिन का होता है। देह प्रमाण उत्कृष्ट तीन कोश का कानखजूरे आदि का होता है। इनके दो लाख उत्पत्ति स्थान होते है। आरभादि करते हुए तीन इन्द्रियवाले जीवों की विराधना की हो इस भव मे अनत भवों मे तो 'मिच्छा मि दुकड देहि'।

चार इन्द्रियवाले जीवो के मक्खी-बीच्छु-कुत्त-चौंरे पतिंगे तीड-मच्छर-डास-भौंरी-कसारी-मकडी आदि के अनेक मेद होते हैं। उनका उत्कृष्ट छह महीने का आयुष्य होता है। उत्कृष्ट देहमान चार कोस तक होता है। इन के दो लाख उत्पत्ति स्थानक है। इन चतुरिन्द्रिय जीवों की आरभ आदि करते हुए हिंसा की हो इस भव में अनन्त भवों मे तो 'मिच्छा मि दुकड देहि'।

पांच इन्द्रियवाले जीवों के मुख्य चार भेद हैं। नारक देवता--तिर्यंच और मनुष्य।

रत्नप्रभा आदि सात नरक भूमियों में पाप कर्म से पैदा होने वाले नारक जीव असंख्याते होते हैं। उनका उत्कृष्ट आयुष्य तेतीस सागरोपम का और उत्कृष्ट देहमान ५०० धनुष्य का होता है। उत्पत्ति स्थान नारकों के चार लाख होते हैं। नारकीय जीवों को स्वयं नारकीय भव में या परमाधामी देव भवमें, छेदन, भेदन, विदारण, जसतपान, कुम्भीपाक पाचन आदि नानाविध कदर्थनाओं से आत्मविराधना की हो इस भव में अनन्त भवों में तो 'मिच्छा मि दुक्कडं देहि'।

स्वर्गादिकों में पैदा होने वाले देवताओं के भुवनपति व्यंतर, ज्योतिष्क और वैमानिक ऐसे चार भेद होते हैं। इनका उत्कृष्ट आयुष्य ३३ सागरोपमका होता है। उत्कृष्ट सात हाथ का देहमान होता है। देवताओं के चार लाख उत्पत्ति स्थान होते हैं। उनके दिव्य भोगों को देखकर ईर्ष्या करके मंत्र तंत्र यंत्र आकर्षणादि से उनको दुःख देने से अथवा उनके भोग साधनों का अपलाप करने से विराधना की हो इस भव या अनन्त भवों में तो 'मिच्छा मि दुक्कडं देहि'।

तिर्यंचों के जलचर, स्थलचर, खेचर, पेट से रेंगनेवाले उरपरिसर्प, भुजाओं से चलने वाले भुजपरिसर्प ऐसे मुख्य

पाच भेद होते हैं। १—जलचरों के मत्स्य कच्छप आदि अनेक भेद होते हैं। सम्मूर्च्छिम और गर्भज जलचरों का उत्कृष्ट पूर्वकोटि वर्ष का आयुष्य होता है। स्वयंभुरमण समुद्र मे पैदा होने वाले जलचरो का उत्कृष्ट देहमान एक हजार योजन तक का होता है। २—स्थलचरों के शेर, बाघ, चीते, अष्टापद, हाथी, घोडे, ऊंट, बैल, गधे, गाएं, भेंस, बकरी, हिरण, रोझ, सुस्से, सूअर, रींछ, नीलगाय, कुत्ते, गीदड आदि अनेक भेद होते हैं। अकर्मभूमि मे पैदा होने वाले मनुष्य का उत्कृष्ट तीन पल्योम का आयुष्य होता है। शरीर प्रमाण तीन कोश का होता है। दूसरों का उत्कृष्ट आयुष्य पूर्वकोटिवर्ष का और देहमान छह कोश का होता है। ३—खेचरों के हस, बगुले, सारस, बाज, चील, गीध, कौए, उल्लु, कमेडी, चिडिया, नीलकण्ठ, चाम, तोता आदि अनेक भेद होते हैं। उनका उत्कृष्ट आयुष्य पल्योपम के असख्यातवें भाग मे होता है और देहमान दो धनुष्य से नव धनुष्य तक यानि धनुष्पृथकत्व होता है। ४—पेट से रेंगने वाले उरपरिसर्पों के अजगर, काले भयकर साप आदि अनेक भेद होते हैं। उनका पूर्वकोटि का उत्कृष्ट आयु होता है और एक हजार योजन का देह प्रमाण। ५-भुजा से चलनेवाले भुजपरिसर्पों के गोह तोलिये गिरगिट गिलोरी बामणी प्रमुख अनेक भेद होते हैं। उनका उत्कृष्ट आयु पूर्व कोटि वर्ष का होता है। दो कोशसे नव कोश तक अर्थात् कोश पृथक्त्व उत्कृष्ट शरीर प्रमाण होता है। इन तिर्यंचों के

४ लाख उत्पति स्थान होते हैं। इन के छेदन भेदन-कदर्थन अंगों के काटने-नाक छेदन-खसीकरण-दागना-अधिक भार का आरोपण-कर्कश घात करण-चारा पानी का अंतराय आदि इस भव में अनंत भवो में किया हो तो 'मिच्छा मि दुक्कडं देहि'।

मनुष्यों के ४५ लाख योजन प्रमाण मनुष्य क्षेत्र में ५ भरत ५-ऐरवत ५-महाविदेह इन पनरह कर्म भूमि-क्षेत्रों में, तीस अकर्म भूमि क्षेत्रों में, ५६ अंतर्द्वीपों में, कुल १०१ भेद होते हैं। वे गर्भज के पर्याप्ता और अपर्याप्ता, और सम्मूर्छिम अपर्याप्ता ऐसे ३०३ भेद होते हैं। वे आर्य, अनार्य, ब्राह्मण-वैश्य-शूद्र-राजा-रंक-दृष्ट-अदृष्ट-ज्ञात-अज्ञात-श्रुत-अश्रुत-स्वजन-परजन-मित्र-शत्रु-प्रत्यक्ष परोक्ष आदि अनेक भेद होते हैं। उनमें युगलियों के उत्कृष्ट तीन पल्योपमका आयुष्य और तीन कोश का शरीर प्रमाण होता है। दूसरे मनुष्यों के उत्कृष्ट पूर्व कोटि वर्ष का आयुष्य और ५०० धनुष्य का देह मान होता है। मनुष्यों की चौदह लाख योनियां होती हैं। उनी की विराधना इस भवमें अनंत भवोंमें की हो तो 'मिच्छा मि दुक्कडं देहि'।

उनमें भी विशेष कर के माता-पिता-भाई-बहिन-पुत्र-स्त्री मित्र-शत्रु-पुत्रवधु-बेटी-सासू-सुसरा-जेठानी-देरानी-काका-काकी-मासा-मासी-भूआ-भूडा-(फूफा)-साला-साली-पोता-पोती-दोहिता-दोहिती-गोती भाईबन्ध-संबंधी-ग्राहक अडौसी पडौसी प्रमुख मनुष्यों के साथ कलह कलेश लड़ाई झगड़े किये हों इस भव में पर भव में तो 'मिच्छा मि दुक्कडं देहि'।

दुष्कृतों की गर्हा

—उसमे, अरिहंत भगवान के मूल मंदिर मे पान खाना, भोजन करना, पानी पीना, जूआ खेलना, पिसाब टट्टी करना, सोना, स्त्री संभोग करना, संभोग समय के वस्त्रादि पहिने रखना, जूते पहिनना आदि दश महा आशातनायें की हो तो 'मिच्छा मि दुक्कडं देहि'।

कुतीर्थ-मिथ्यात्व को फैलाया हो, कुदेव कुगुरु की सेवा की हो, श्रीवीतरागमार्ग का अपलाप किया हो, ज्ञानदाता गुरु का अपलाप किया हो, स्थापनाचार्यजी की पडिलेहणा भूलाई हो, गठसी मूठसी नवकारसी प्रमुख पच्चक्खाण तोडा हो, रात्री भोजन किया हो, उत्सूत्र की प्ररूपणा की हो, छंद-अलंकार-ज्योतिष-वैद्यक-नाटक-कामशास्त्र कुशास्त्र अयोग्य व्यक्तियों को सिखाये हो, श्री जिन मन्दिर को गिराया हो, श्री जिन प्रतिमा को खंडित की हो, श्री जिन प्रतिमा का उत्थापन किया हो, देवपूजा संबंधी छोटे मोटे कलश घडे चंदन घिसने का चकलोटा-चंदन कुंडी धोती-उत्तरासन आदि उपकरणों को अपने घर के काम में लगाये हो, देव द्रव्य का, गुरु द्रव्य का भक्षण किया हो, गुरुओं की पुस्तकें बेच खाई हों। पाप कुटुंब का पोषण किया हो, अछाये में प्रतिक्रमण किया हो, रेंट-खेत कूए तलाव आदि आरंभ किये हो, इष्ट वियोगमें रुदन किया हो, फांसी देकर किसी का गला काटा हो तो 'मिच्छा मि दुक्कड देहि'।

अनंतभव कृत पापों की गर्हा.

कसाई के भवमें गाय भैंस बकरे आदि मारे हों, चीडिमार के भवमें चीडियां मारी हों, धीवर के भवमें मछलियां मारी हो, शिकारी के भव में हिरण मारे हों, कुम्हार के भव में ईंट निवाह भांड निवाह पकाये हों, तेली के भव में सजीव तिल सरसों आदि को पीलवाये हो, सुथार के भव में पेड़ों को काटे हों, माली के भव में नाना प्रकार की वनस्पति को बोई हों, काटी हो, वेची हो, भड़भुंजे के भव में गेहूं-मूंग-चने आदि भुंजवाये हों, लोहार के भव में अग्नि का आरंभ किया हो, खाने खुदवाई हों, कृषक भव में खेत में हल चलाया हो, निदान किया हो, धान्य का लवण किया हो, भार वाहक के भव में ऊंट-बैल-गधे आदि जीवों पर अधिक भार लदाया हो, खस्सी की हो, कोडे मारे हों, ताजने आदि से पीडा पैदा की हो, मारे हों, भील के भव में संघ लूटे हो, राहगिरों को सताये हों, कोली-मैणों के भव में जंगल जलाये हों, कोटवाल के भव में छेदन-भेदन-ताडना-तर्जना आदि से मनुष्यों का कदर्थन करवाया हो, काजी मुल्लों के भव में चीडियां आदि मारी हो, सांप विच्छु आदि के भव में मनुष्यादि को काटा हो, जहर चड़ाने से प्राणयुक्त किये हो, पीडित किये हो, बिल्ली के भव में चूहे आदि का भक्षण किया हो, इस भव में पर भव में किसी को जहर दिया हो, सौत के उपर उस के बेटोंके उपर द्रोह चिंतन

किया हो, अपने पराये गर्भ गलाये हो, अनछाना पानी गिराया हो, शील व्रत को लेकर तोडा हो इस भव मे पर भव मे श्रावकों के साधुओं के व्रतों को महाव्रतों को लेकर तोडे हो, साधु साध्वी साधर्मियों की निंदा की हो, और भी दाई दूती कर्म किया हो, खडन दलन रसोई लीपना आदि करके कोई पाप किया हो इस भव मे पर भव मे तो 'मिच्छा मि दुक्कड देहि'।

सुकृत की अनुमोदना

जिणभवण बिंब पुत्थय, सघ-सरूवाइ सत्त खेत्ताई।
जिण्णुद्वारो पोसह-साला साहारण चेव ॥ १ ॥

इस भव में पर भव में श्री वीतराग भगवान का मन्दिर बनाया हो, श्री वीतराग भगवान की रत्न मूंगे-सुवर्ण-पीत्तल पाषाण आदि से प्रतिमायें बनवाई हो, सूत्र सिद्धान्त का पुस्तकें लिखवा कर साधुओं को बाचना के लिये दी हो, साधु-साध्वियों के लिये शुद्ध, एषणीय, अशन पान-खादिम स्वादिम वस्त्र-पात्र-पीठ फलक औषध भेषज्य आदि भक्ति पूर्वक दिये हो, साधर्मिकों की भोजन से वस्त्रों से भक्ति की हो, जीर्णोद्धार किये हो, पौषधशालायें बनवाइ हो, साधारण द्रव्य बढाया हो, आचार्य-उपाध्याय-वाचक आदि पद-प्रतिष्ठा महोत्सव किये हो, श्रीशत्रुंजय गिरिनार आबू अष्टापद-सम्मेतशिखर-राणकपुर-जेसलमेर-स्थभणपार्श्वनाथ गोडीपार्श्वनाथ-सखेश्वरपार्श्वनाथ सौरीपुर

हस्तिनापुर फलोदी प्रमुख तीर्थों की यात्रायें की हो उसके पुण्य किये हो उसकी अनुमोदना करो ।

पूर्व भव में पृथ्वीकाय होकर वीतरागप्रतिमा रूप से, अप्काय होकर तीर्थंकरों के स्नात्राभिषेक में, अग्निकाय होकर धूप खेने के निमित्त, वायु होकर गरमी से पीडित जिन साधुओं को शीतलताके लिये, वनस्पति काय होकर फूल फल आदि कों से भगवान की पूजा में, त्रस भव में शंख होकर जिन मंदिरों में मंगलध्वनि के उपयोग में, आये हो तो इस पुण्य की अनुमोदना करो ।

श्रीपर्यूषणा पर्व में श्रीकल्पसूत्र पुस्तकजी लिया हो, पढा हो, सुना हो पर्यूषण पर्व में पौषध करने वालों को जिमाये हो, साधर्मिवात्सल्य किया हो, सुपात्र में दान दिया हो, शीलव्रत का पालन किया हो कल्याणक एकादशी-पंचमी-अष्टमी-एकादशी-पाखी आदि पर्वतिथियों में उपवास आदि तप किया हो, उपधान-समवसरण प्रमुख तप किया हो, उन किये हुए तप का उद्यापन किया हो, साधर्मिकों के लिये जो कोई अच्छा उपकारी काम किया हो, धर्मध्यान किया हो और जो कोई पुण्य कृत्य किये हो इस भव में पर भव में उन सब की अनुमोदना करो । फिर भी अपनी शक्ति के अनुसार सात क्षेत्रों में धन व्यय करो । आरंभ आदि का नियम पनरह दिन के लिये महीने भरके लिये या यावज्जीवन के लिये करो ।

॥ इति ॐ शांति ॥

सर्व मंगल मांगल्यं, सर्वकल्याणकारणम्
प्रधानं सर्वधर्माणां, जैनं जयति शासनम् ॥

प्रशस्ति श्लोक

आराधनासुगमसंस्कृतवार्तिकाभ्यां,
चक्रे कृतात्मसमयसुन्दर आदरेण ।
उच्चाभिधाननगरे, महिमासमुद्र-
शिष्याग्रहेण मुनिवेदतुरंगचन्द्रवर्षे ।

अर्थात्—उच्चानगर में १६६७ वर्ष में अपने शिष्य महिमा समुद्र के आग्रह से सरल संस्कृत वार्तिक में श्रीसमयसुन्दरोपाध्यायजी ने इस आराधना को बनाई ।

वेदनारदनवेन्दु-वर्षे नागपुरे वरे ।
अलेख्याराधनार्थोऽयं, जिनकृपाचन्द्रसूरिणा ॥ १ ॥

आराधना समाप्ता ।